* श्री रेवतीरमणो जयति *

* श्रीनारायणभट्टचरितामृतम् *

ध्यात्वा बलं स्वहृदि शरदचन्द्रकांतिं
नीलाम्बरं हलधरं मुशलं दधानम् ।
वक्ष्यामि पुण्यचरितं कुलनायकस्य
नारायणस्य मम भास्करनन्दनस्य ॥१॥
नवकुंतलशोभिताननो मृदुहस्ते नवनीतगोलकः ।
कमलायतलोचनो हि मां मृदुहासोऽवतु लाड़िलो वटुः ॥२॥
श्रीमद्ब्रह्मसमुद्भवो मुनिवरो यो नारदाख्यः पुरा
प्रह्लाद-ध्रुव-बादरायणमुखान् भक्तिं हरेः संददौ ।
उद्धर्तुं ब्रजमण्डलं भुवि पुनः कृष्णाज्ञया संभव
स्तैलंगद्विजवर्य्यभास्करसुतो नारायणः पातु नः ॥३॥

श्रीश्रीगौराङ्गविधुर्जयति

अब हम ब्रजाचार्य्य, श्रीमन्नारायणभट्ट जी का चरित्र वर्णन करते हैं। शरच्चन्द्रमा के समान कान्ति वाले, नीलाम्बरधारी, हल-मूसल से शोभित श्रीबलदेव जी का अपने हृदय में ध्यान करते हुए कुलनायक, भास्करनन्दन श्रीनारायणभट्ट गोस्वामि के पुण्य चरित को कहते हैं ॥१॥

नवीन केशकलाप से शोभायमान मुख वाले, कोमल हाथों में नवनीत गोलोकधारी, कमल की तरह विस्तार नेत्र वाले, मनोहर हास्यपरायण, लाडिल नामक बालक मेरी रक्षा करें ॥२॥

जिन ब्रह्मपुत्र, मुनिवर श्रीनारदजी ने पहिले प्रह्लाद-ध्रुव-व्यासादिकों को हरि भक्ति का दान किया था, वे फिर अब लुप्त प्राय ब्रजमंडल के उद्धारार्थ श्रीकृष्णचन्द्र की आज्ञा से पृथ्वी में जन्म प्राप्त तैलङ्ग द्विज श्रेष्ठ, भास्करनन्दन, श्रीनारायणभट्ट-गोस्वामी रूप में हमारी रक्षा करें ॥३॥

नारायणप्रयुक्तानां धर्माणां यः प्रवर्त्तकः ।
स गोष्ठभूमिलेखानां गुरुरव्यान्न आदिजः ।
गोस्वामिनं श्री रघुनाथतातं स्मृत्वा हृदि श्री व्रजभक्तवर्य्यम् ।
तल्लेखमालंब्य च यत्र तत्र वक्तुं प्रवृत्तोस्मि चरित्रवर्य्यम् ॥५॥
श्रीनारायणभट्टो मां स्वप्ने प्राह प्रसन्नधीः ।
पुत्र त्वं मम भक्तोऽसि मच्चरितं प्रकाशय ॥६॥
मया स्वकीयग्रन्थेषु यन्मतं लिखितं स्फुटम् ।
संक्षेपेण त्वया तन्मे लेखनीयं यथामतिः ॥७॥
एवं स्वप्नाज्ञयाहं वै लघुविद्योऽपि भक्तितः ।
तमेव हृदि संचिंत्य श्रीमद्भास्करनन्दनम् ॥८॥
श्रीनारायणभट्टस्य चरितं लोकपावनम् ॥
यथाज्ञायामहं वक्ष्ये हरिभक्तिविवर्द्धनम् ॥९॥
एकदा नारदः श्रीमान् पर्य्यटन्नवनीं प्रभुः ।

श्रीनारायणभट्ट के द्वारा प्रवर्त्तित व्रज सम्बन्धि धर्म्म के जो प्रवर्त्तक हैं, वे पूर्व्वज, देवदेव, श्रीगुरुदेव हमारी रक्षा करें ॥४॥

व्रजभक्त श्रेष्ठ, पितृचरण, श्रीरघुनाथ गोस्वामी जी को हृदय में स्मरण करके तथा उनके लेख का आश्रय ले भट्टजी के चरित्र को संक्षेप में कहने के लिये प्रवृत्त हुआ हूँ ॥५॥

एक दिन श्रीनारायणभट्टजी ने प्रसन्न होकर स्वप्न में मुझसे कहा कि-बालक ! तुम मेरे भक्त हो। अतः मेरे चरित्र का प्रकाश करो ॥६॥

मैंने अपने ग्रन्थों में जिन मतों को प्रकट लिखा है तुम मेरे उन मतों को यथा बुद्धि से संक्षेप में वर्णन करो ॥७॥

इस प्रकार स्वप्न में आदेश प्राप्त कर अल्पबुद्धि मैं उन भास्करनन्दन को भक्ति के साथ हृदय में चिन्तन करके हरिभक्ति बढ़ाने वाले, लोकपावन उनके चरित्र को उन्ही की आज्ञानुसार वर्णन करताहूँ॥८-९

एक समय श्रीमन्नारद जी श्रीकृष्णभक्ति में निमग्न हो पृथ्वी पर्य-

तीर्थं तीर्थं विचक्राम कृष्णभक्तिपरिप्लुतः ॥१०॥
प्रयागं नैमिषारण्यमयोध्यां द्वारिकां तथा ।
चित्रकूटं नाशिकं च श्रीरङ्गं सेतुबंधनम् ॥११॥
बदरीशं जगन्नाथं यत्र यत्र गतो मुनिः ।
न च तृप्तिं गतो धीमान् सर्वश्रेष्ठं विचिंतयन् ॥१२॥
कृष्णलीलासमाकीर्णं समस्तव्रजमण्डलम् ।
गोपवेषधरो यत्र बालकेलिर्वभौ हरिः ॥१३॥
तमेव हृदि संचित्य मथुरामागतो मुनिः ।
नत्वा स्नात्वा च कालिंद्यां पीत्वा वार्य्यमृतोपमम् ॥१४।
कृष्णप्रसूतिं मथुरां परिक्रम्य पुनः पुनः ।
स्थितो मुहूर्त्तं तत्रैव कृष्णध्यानपरायणः ॥१५॥
प्रतस्थे मौनमास्थाय वृंदारण्यं दिदृक्षया ।
सैव भूमिश्च ते शैलाः कृष्णपादांकविग्रहाः ॥१६॥

टन करते हुए, प्रत्येक तीर्थों में विचरण करने लगे ॥१०॥

प्रयाग, नैमिषारण्य, अयोध्या, द्वारिका, चित्रकूट, नासिक, श्रीरङ्ग-क्षेत्र, सेतुबन्ध, बदरिका, नीलाचल आदिक जहाँ-जहाँ मुनिराज गये उन तीर्थों की सर्व्वश्रेष्ठता का चिन्तन करते हुए वहाँ तृप्ति को नहीं प्राप्त हुए ॥११॥१२॥

आप ने देखा कि, समस्त ब्रजमण्डल श्रीकृष्णलीलाओं के द्वारा व्याप्त है जहाँ गोपवेशधारी,बालकेलिपरायण श्रीहरि सर्वत्र शोभायमान हैं ॥१३॥

उन का ध्यान करते-करते मुनिराज मथुरा में आये तथा श्री मथुरा को नमस्कार कर जमुना में स्नान और अमृततुल्य उसका जल-पान करने लगे। आप कृष्ण की जन्मभूमि मथुरा की परिक्रमा दे कर ध्यान परायण हो क्षणकाल स्थित हुए ॥१४॥१५॥

उसके उपरान्त वृन्दावन को देखने के लिए चल दिये। वह भूमि

हृदि कृष्णं गता वाह्ये जड़रूपेण संस्थिताः ।
तादृशं हि ब्रजं सर्वं दृष्ट्वा हर्षं गतो मुनिः ॥१७॥
कुंडास्त्वंतर्गता भूमौ लीलास्थानं तथैव च ।
गुप्तं न ज्ञायते लोकैस्तत्रत्यैरपि मानुषैः ॥१८॥
सर्वत्रैव ब्रजो देशो लतावृक्षाकुलो भवत् ।
तत्र योगं समास्थाय कृष्णं दध्यौ धिया मुनिः ॥१९॥
ददर्श राधिकायुक्तं रासमंडलसंस्थितम् ।
पीताम्बरं घनस्यामं परिपिच्छलसन्मुखम् ॥२०॥
सुनसं सुभ्रुवं हृद्यं पद्मपत्रारुणेक्षणम् ।
बिभ्राणं कौस्तुभं मालां हार-केयूरभूषितम् ॥२१॥
मुद्रिकावलयोपेतं कटिसूत्रविराजितम् ।
वेणुवाद्यरतं शश्वत् गोपीमंडलमण्डनम् ॥२२॥
तं दृष्ट्वा देवदेवेशं गोपीभावं गतो मुनिः ।
तुष्टाव परया भक्त्या प्रीत्या गद्गदया गिरा ॥२३॥

तथा पर्व्वत समूह श्रीकृष्ण के पादचिन्हों से युक्त थे । हृदय में कृष्णभाव प्राप्त बाहिर जडरूप उस ब्रजमण्डल को देख कर मुनिराज बड़े ही प्रसन्न हुए ॥१६॥१७॥

उस समय ब्रजमण्डल के सभी कुण्ड तथा लीलास्थलियाँ प्रायः अन्तर्ध्यान हो गये थे । उनके लुप्त होने के कारण वहाँ के रहने वालों से भी वे स्थान अगोचर थे । उस समय समस्त ब्रजप्रदेश लता-वृक्षों से आच्छन्न था । मुनिराज योगबल से श्रीकृष्ण का ध्यान करने लगे॥ १८-१९॥

आपने श्रीराधिका से युक्त,रासमण्डल स्थित,पीताम्बरधारी,घनश्याम, मयूरपंख से शोभायमान मस्तक वाले, सुन्दर नासिका तथा भ्रकुटि से युक्त, कमलनयन, कौस्तुभ तथा वनमालाधारी, हार-केयूर-मुद्रिका-बलय आदि से शोभित,कटिसूत्र से सुशोभित,वेणुवाद्य परायण, गोपियों से परिमण्डित, श्रीकृष्ण को देखा ॥२०॥२२॥

नमो ब्रजाधिपतये नमो नित्यविहारिणे ।
श्री राधिकासमेताय गोपीनाथाय ते नमः ॥२४॥
ततः प्रसन्नो भगवान् नारदाय महात्मने ।
शुद्धसत्वस्वरूपाय प्रोवाच प्रीतिमानसः ॥२५॥
दृष्टा मधुपुरी ब्रह्मन् दृष्टं वृंदावनं मम ।
यमुना सरितां श्रेष्ठा दृष्टो गोवर्द्धनो गिरिः ॥२६॥
सर्वे च पर्वता दृष्टाः पादचिन्हांकिता मम ।
ब्रजमण्डलभूगोलं वनान्युपवनानि च ॥२७॥
एतस्मादपरं किंचित् तीर्थं भूमौ न विद्यते ।
मम विग्रहरूपं हि भक्तचित्तहरं परम् ॥२८॥
अत्रैव निवसे ब्रह्मन् न त्यजामि ब्रजं क्वचित् ।
किंतु कालवशाज् जीवा दर्शने नाधिकारिणः ॥२९॥
त्वं तु प्रियतमो भक्तो दर्शनं ते ददाम्यहम् ।
तव किं वर्त्तते चित्ते तद्वदस्व महामुने ॥३०॥

उन देव देवेश को देख कर मुनिराज गोपीभाव को प्राप्त हो गए तथा अत्यन्त भक्ति गद् गद् वाणी से स्तुति करने लगे ॥२३॥

हे ब्रजाधिप ! हे नित्यविहारी ! हे राधिका से युक्त, हे गोपीनाथ ! तुम्हारे लिए नमस्कार है ॥२४॥

भगवान् श्रीहरि उस स्तुति से प्रसन्न होकर शुद्धसत्व-स्वरूप श्रीनारद जी से बोले कि हे ब्रह्मन् ! तुमने मधुपुरी देखी तथा मेरा वृन्दावन भी देखा । यमुना-गोवर्द्धन तथा मेरे पाद चिन्हों से युक्त पर्व्वत समूह, वन-उपवन के साथ समस्त ब्रजमण्डल का अवलोकन किया । पृथ्वी में इस ब्रजमण्डल से बढ़कर और कोई तीर्थ नहीं है । ब्रजमण्डल के ये सब तीर्थ मेरे ही शरीररूप तथा भक्तों के चित्त को हरण करने वालेहैं॥२५-२८

हे ब्रह्मन् ! मैं सर्व्वदा यहाँ निवास करता हूँ तथा क्षणकाल भी इन्हें नहीं परित्याग करता । परन्तु इनका कालचक्र से जीवों को सब

प्रत्युवाच ततो हृष्टो नारदो भगवत्प्रियः ।
त्वया सृष्टं हि देवेश जगत्सर्वं चराचरम् ॥३१॥
त्वमेव जगतां नाथ स्थिति-संहारकारकः ।
स्तान् मोक्षं हि ददासीश भक्ता ये चरणाश्रिताः ॥३२॥
येऽपि मोक्षं न वांछन्ति तांस्त्वं भक्तिं ददासि हि ।
सर्वे भक्ता भवंत्वेते इति ते वर्त्तते हृदि ॥३३॥
एतदर्थं हि भगवन्प्रार्थयामि पुनः पुनः ।
व्रजभक्त्याश्रयः केचित्त्वल्लीलादर्शनोत्सुकाः ॥३४॥
त्वामेव चिंतयंत्येते न च मोक्षाभिकांक्षिणः ।
तेभ्यो दर्शय लीलां स्वां प्रत्यक्षो भव केशव ! ॥३५॥
प्रत्युवाच ततो देवो भगवान् भक्तवत्सलः ।
कालोऽप्ययं मया सृष्टश्चतुर्युगप्रवर्तकः ॥३६॥

समय दर्शन नहीं होता है । तुम मेरे प्रियतम भक्त हो । मैंने तुमको दर्शन दिये हैं । अब तुम अपने हृदय की इच्छा को प्रगट करो॥२६-३०

भगवत्प्रिय श्रीनारद यह सुनकर प्रसन्न होकर कहने लगे–हे देवेश ! तुम्हीं से चराचर जगत् की सृष्टि हुई है । तुम जगत् के स्थिति तथा संहार कारक हो । हे ईश ! चरणाश्रित भक्तों को मोक्ष देते हो । जो मुक्ति नहीं चाहते हैं उनके लिये भक्ति देते हो । सब कोई भक्त बने यह आपकी इच्छा रहती है । हे भगवन् ! इसलिये मैं प्रार्थना करता हूँ कि व्रजभावपरायण कोई-कोई भक्त लीला दर्शन के ही इच्छुक होकर तुमको चिन्तन करते हैं तथा वे मोक्ष को नहीं चाहते हैं । हे केशव ! अतः इनको अपनी लीला दर्शन कराकर साक्षात् रूप में दर्शन दें ॥३१-३५॥

तदनन्तर भक्तवत्सल भगवान् कहने लगे हे नारद ! चतुर्युग सम्बन्धी काल की मैंने ही सृष्टि कि है और जिस जिस समय धर्म्म की ग्लानि होती है उसी समय धर्म्म की रक्षा के लिये युग युग में अवतार

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानि र्भवति नारद ! ।
तस्य संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥३७॥
स तु कालो व्यतिक्रांतः कलिरद्य प्रवर्तते ।
न च मे दर्शने योग्या नराः पुण्यविवर्जिताः ॥३८॥
तेषामप्युपकारार्थमुपायं ते वदाम्यहम् ।
चतुर्वर्ष-सहस्राब्दमुच्छिन्नं व्रजमंडलम् ॥३९॥
बालभावं समाश्रित्य यत्र लीला मया कृता ।
मम प्रीतिकरं चैनं त्वं प्रकाशय नारद ॥४०॥
कुंडांश्च पर्वतान् वीथी र्वनान्युपवनानि च ।
बालक्रीडनकं स्थानं रासस्थानं तथैव च ॥४१॥
सर्वं प्रकाशय त्वं हि मदाज्ञा-परिपालकः ।
मम वेषधरं बालं ब्राह्मणं परिकल्प्य च ॥४२॥
गोपीवेषधरान्कांश्चित् राधावेषं तथा परम् ।
श्रीदामादिसखीन्कांश्चित् कल्पयित्वा मदाज्ञया ॥४३॥
सर्वं लीलानुकरणं कर्त्तव्यं मे प्रयत्नतः ।
यस्यां तिथौ यद्वृत्तं स्यात् लीलाकाले ममानघ ॥४४॥

लिया करता हूँ । वर्त्तमान युग कलिकाल होने के कारण सभी मनुष्य प्रायः पुण्यरहित हैं अतः वे सब मेरे दर्शन नहीं पाते हैं । तथापि उनके उपकार के लिये मैं उपाय कहता हूँ । प्रायः चार हजार वर्ष से व्रजमंडल लुप्त प्राय है । मैं ने यहाँ बालभाव से जहाँ जहाँ क्रीडा की हैं तुम उन प्रीति कर स्थानों–कुण्ड-पर्व्वत-कुञ्ज-मार्ग-वन-उपवन, बालक्रीडा-स्थान, रासस्थान समूह को प्रकट करो । क्यों कि तुम मेरी आज्ञा के परिपालक भक्त हो । और भी सुनो, एक ब्राह्मण बालक को मेरा वेश, अन्य ब्राह्मण बालक को श्रीराधिका वेश तथा अपर ब्राह्मण बालकों को ललितादि गोपीवेश और श्रीदामादि सखावेश के द्वारा विभूषित करा कर मेरी समस्त लीलाओं के अनुकरण कराओ । जिस तिथि में

तत्सर्वं निर्णयेनैव कर्त्तव्यं विधिपूर्वकम् ।
दक्षिणे मथुरायां हि भृगुवंशसमुद्भवः ॥४५॥
रङ्गनाथसुतो धीमान् दीक्षितो भास्करो द्विजः ।
ब्रह्मणोऽंशसमुद्भूतो वेदवेदांगपारगः ॥४६॥
गायत्र्यंशसमुद्भूता तस्य भार्या यशोमती ।
तयोस्त्वं तनयो भूत्वा सर्वशास्त्रविशारदः ॥४७॥
मम ध्यानपरो नित्यं गोदावर्यां स्थितो भव ।
तत्र ते दर्शनं दास्ये राधिका-सहितोऽप्यहम् ॥४८॥
त्वं मे मनो हि देवर्षे मम चांश-समुद्भवः ।
रङ्गदेवी च हृदयं आवेशं ते करिष्यति ॥४९॥
सकलस्य व्रजस्य त्वमाचार्यो हि भविष्यति ।
मम प्रीतिकरं भक्तं को न नमेत् जगत्त्रये ॥५०॥
इत्याज्ञप्तस्तु कृष्णेन हर्षणोत्फुल्ललोचनः ।
प्रणम्य भुवि कायेन ययौ यादृच्छिको मुनिः ॥५१॥

तथा जिस नक्षत्र में मैंने जो जो लीला की हैं उनको निर्णय के साथ विधिपूर्वक कराओ । पहले तुम दक्षिण देश में मथुरा पत्तन में जाकर भृगुवंश में जन्म लेओ ॥३६-४५॥

वहाँ एक रंगनाथ के पुत्र बुद्धिमान् भास्कर नामक दीक्षित ब्राह्मण हैं । वे ब्रह्मा के अंश से उत्पन्न हुए हैं तथा समस्त वेद-वेदांग के पण्डित हैं । उनकी गायत्री अंश से उत्पन्ना यशोमती नामक भार्या है । तुम उनके पुत्र होकर जन्म लो । तुम समस्त शास्त्र में पण्डित तथा नित्य मेरे ध्यान-परायण होगे । वहाँ गोदावरी के तट पर राधिका के साथ मैं तुम्हें दर्शन देऊँगा । तुम मेरे मन हो तथा मेरे अंश से उत्पन्न हो । तुम में रंगदेवी का आवेश रहता है और समस्त व्रजमण्डल में तुम आचार्य्य करके प्रसिद्ध होगे । मेरे प्रीतिकारी भक्त को त्रिजगत् में कौन नमस्कार नहीं करता है ॥४६-५०॥

कृष्णस्त्वंतर्दधे तत्र वृंदारण्ये निजस्थले ॥५२॥
ततः पंक्ति-शते वर्षे शुद्धे पंचशताधिके ।
अष्टाशीत्यधिके मासे वैशाखे शुक्लपक्षके ॥५३॥
चतुर्दश्यां दिवा जन्म नृसिंहस्याभवद्यदा ।
तदा भास्करभार्यायां नारदोऽवतरद् मुनिः ॥५४॥

पंक्तिशब्दः दश वाचकः अष्टाशीत्युत्तर-पंचशताधिकसहस्रमे वर्षे इत्यर्थः ।
तत्संख्या वाचक-अंकैर्बोद्धव्या १५८८ संवत्सरे इत्यर्थः ॥

तदा दुंदुभयो नेदुर्देवमानववादिताः ।
अकस्मात् पुष्पवृष्टिश्च ह्याकाशादभवत् क्षितौ ॥५५॥
भास्करश्च मुदं लेभे पुत्रं दृष्ट्वा पुनः पुनः ।
जातकं कारयामास वाचयित्वा च मंगलम् ॥५६॥
ददौ दानं द्विजातिभ्यो याचकेभ्यो यथामनः ।
सर्वतः स्त्रीकदंबोपि दिदृक्षुः समुपागतः ॥५७॥
गानं कुर्वन्ति हृष्यन्ति सिंचन्ति च परस्परम् ।
मुदा दानं प्रयच्छन्ति दृष्ट्वा बालं स्त्रियो मुहुः ॥५८॥

हर्ष से प्रफुल्लनेत्र श्रीनारदजी श्रीकृष्ण के द्वारा इस प्रकार आज्ञा को प्राप्त होकर श्रीकृष्ण को प्रणाम कर इच्छानुसार चल दिये तथा श्रीहरि भी अन्तर्द्धान हो गये ॥५१-५२॥

अनन्तर १५८८ संबत वैशाखमास शुक्लपक्ष चतुर्दशी तिथि श्रीनृसिंह-जन्मदिवस में भास्कराचार्य की भार्य्या से मुनिराज नारद अवतीर्ण हुए । उस समय देव तथा मनुष्य समूह दुन्दुभि बजाने लगे और आकाश से पुष्पों की वृष्टि हुई । भास्कराचार्य ने बार-बार पुत्र को देख कर आनन्द के साथ मंगलवाचन आदिक जात कर्म्म कराया तथा ब्राह्मण गण को और याचकों को प्रचुर दान दिया । चारों ओर से सब स्त्रियाँ पुत्र को देखने के लिये आने लगीं तथा गान करती हुईं पारस्परिक दधि-दुग्ध हरिद्रादिकों का सिंचन कर परम हर्ष को प्राप्त हो दा-

गौराङ्गं सुमुखं हृद्यं सुनसं विद्रुमाधरम् ।
विशालवक्षसं स्निग्धं बलिवल्गुदलोदरम् ॥५९॥
सूक्ष्मकटिं बृहद्बाहुं पद्मकोमलपादकम् ।
आशिषं प्रयुजुः सर्वाश्चिरं जीवेति बालके ॥६०॥
वादित्राणि विचित्राणि वादयंत्य पुनः पुनः ।
स्वस्तिकं कारयामासु वृद्धा मान्यजनैस्ततः ॥६१॥
यथेच्छं हि धनं सर्वे मान्यवर्गाश्च लेभिरे ।
नामकर्णं ततश्चक्रु ब्राह्मणाः स्वस्तिवाचकाः ॥६२॥
नारायणगुणाः सर्वे ह्यस्मिंस्तिष्ठन्ति बालके ।
तेन नारायणो नाम बालकोऽयं भविष्यति ॥६३॥
लक्षणै र्ज्ञायते नूनं नारदोऽयं मुनीश्वरः ।
भक्तिं दास्यन् हरेर्लोकं चरिष्यति न संशयः ॥६४॥
इत्युक्त्वा प्रययुः सर्वे विप्रा जातककोविदाः ।
पूजिता-दानमानाभ्यां भास्करेण विधानतः ॥६५॥

नादि करने लगीं । उन्होंने बालक का आनन्द से दर्शन किया ५३-५८

गौर अंग, सुन्दरमुख-नासिका वाला, मनोहर लाल-अधरवाला, विशाल वक्षः से शोभायमान, स्निग्ध, त्रिवलीरेखा से युक्त उदरवाला, पतली कमर से सुन्दर, विशाल दोनों भुजाओं से युक्त, पद्म की भाँति कोमल चरणवाले बालक को देख कर स्त्रियाँ "दीर्घजीवन लाभ करो" इस प्रकार आशीर्वाद देती हुई विविध विचित्र वाद्यों को बजाने लगीं । वृद्ध स्त्रियों ने माननीयजनों के द्वारा स्वस्ति पाठ कराया । माननीयगण को अपनी इच्छा के अनुसार प्रचुर धन प्राप्त हुआ तथा स्वस्ति पाठ के साथ ब्राह्मणों ने पुत्र का नाम करण किया ॥५९-६२॥

बालक में श्रीनारायण के समस्त गुण हैं इस लिये नारायण ही इसका नाम है । लक्षणों से जाना जाता है कि यह बालक निश्चय मुनीश्वर नारद है । यह लोगों को भक्ति प्रदान पूर्वक विचरण करेगा

यशोमती च तं बालं लालयन्ती पुनः पुनः ।
मुदं लेभे परां साध्वी गोपालोऽपि मुदं ययौ ॥६६॥
ज्येष्ठो भ्राता स बालस्य विद्वान् कृष्णपरायणः ।
विचचार मुदा युक्तः क्वचिदंतः क्वचिद्बहिः ॥६७॥
गोपालस्य वयस्याश्च मोदमानाः परस्परम् ।
हसंतो हासयंतश्च बुभुजु र्मोदकान्मुदा ॥६८॥
आगच्छंत्यश्च गच्छंत्यो मोदमानाः पुरस्त्रियः ।
बलिं ददु र्यशोमत्यै बालस्य भूषणादिकम् ॥६९॥
एवं दिने दिने भट्टश्चक्रे हर्षमहोत्सवम् ।
षष्ठे तु दिवसे सर्वा षष्ठीपूजां चकारह ॥७०॥
ब्राह्मणान् भोजयामास विविधान्नैश्चतुर्विधैः ।
एवं वार्षिकसंस्कारान् बालकस्य चकार सः ॥७१॥
बालोऽपि बालचरितै र्मातापित्रोर्मुदं ददौ ।
तथैव सर्वलोकानां पश्यतां समुदं ददौ ॥७२॥

इस में कोई सन्देह नहीं है । विप्रगण दान-तथा सन्मान से भास्कर के द्वारा पूजित होकर विदा हुए ॥६३-६५॥

सती यशोमती बालक का बार-बार लालन करती हुई अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हुई तथा बालक के ज्येष्ठ भ्राता, कृष्णपरायण, विद्वान् गोपालजी भी प्रसन्नता को प्राप्त होकर भीतर-बाहिर बालक के आस-पास घूमने लगे । उनके सखागण प्रसन्न होकर परस्पर हँसते-हँसाते हुए मोदकों का भोजन करने लगे । पुर स्त्रियाँ प्रसन्नता के साथ आती याती हुईं यशोमति को बालक के लिये भूषणादिकों का उपहार देने लगीं । इस प्रकार भट्ट जी ने दिन दिन महोत्सव मनाया । छठे दिवस बालक की छटी पूजा हुई । उस दिन ब्राह्मणों को चतुर्विध अन्नादि से भोजन कराया गया । इस प्रकार बालक के सब वार्षिक संस्कार होने लगे । यह बालक भी अपने मनोहर बालचरित्रों के द्वारा

इत्थं स सर्वजगतां हितकृद्दयालुः
कृष्णाज्ञया धृतमनुष्यतनुर्महात्मा ।
भूत्वाथ दीक्षितकुलेन्दुरसौ मुनीन्द्रो
विप्रेन्द्र-सद्मनि बभौ किल बालकेली ॥७३॥

इतिश्रीमन्नारदावतार-श्रीनारायणभट्टाचार्य्य-कुलोद्भव-गोस्वामि श्रीरघुनाथात्मजगोस्वामिजानकीप्रसादविरचिते श्रीनारायणाचार्य्यचरितामृते अवतारकथनो नाम प्रथमास्वादः ॥१॥



एवं नारायणो बालो वर्द्धमानः पितुर्गृहे ।
प्रमोदं जनयामास बांधवानां दिनेदिने ॥१॥
कदाचित् भास्करो भट्टो ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।
यज्ञोपवीतं बालस्य कारयामास दीक्षितः ॥२॥
ब्राह्मणेभ्यो ददौ धीमान् स्वाद्वन्नं गुणवत्तमम् ।
रजतं वसनं भूमिं गाः सुवर्णं तथा दिशत् ॥३॥
यज्ञोपवीतिनं बालं भोजयित्वा मुदा द्विजः ।
ज्ञातिभिर्वन्धुभिः सार्द्धं स्वयं च बुभुजे विभुः ॥४॥

पिता-माता तथा देखने वाले समस्त लोगों को आनन्द देने लगा६६ ७२

इस प्रकार समस्त जगत के हितकारी, दयाल श्रीनारद जी श्रीकृष्ण की आज्ञा से मनुष्य शरीर धारण कर दीक्षित कुल चन्द्रमा हो विप्रगृह में बालक्रीडा करने लगे ॥७३॥

इस प्रकार बालक पितृगृह में बढ़ने लगा तथा प्रतिदिन बान्धवों को आनन्द देने लगा। भास्कर जी ने यथा समय वेदपारग पण्डितों के द्वारा बालक का उपनयन संस्कार कराया। ब्राह्मणों को मिष्टान्न से तृप्त करा कर सुवर्ण-रौप्य-वसन-धरित्री आदि का दान दिया। उपरान्त जाति-बन्धुओं के साथ भोजनादि करते हुए सबको ताम्बूल प्रदान तथा माला-तिलकादि से भूषित करा कर सन्मान के साथ अपने-अपने घर

सत्कृत्वा च ततः सर्वान् तांबूल-तिलकादिभिः ।
भूषाकल्पं तथा दिव्यमेकैकस्मै ददौ मुदा ॥५॥
गृहं प्रस्थापयामास ज्ञातिसंबंधिबांधवान् ।
तेऽपि नारायणं बालं पश्यंतश्चक्षुभिस्तदा ॥६॥
तृप्तिं न लेभिरे सर्वे चकोराः शशिनं यथा ।
अथ नारायणो बालो गायत्र्यं व्रतमास्थितः ॥७॥
वेदानधीतबान् सर्वान् पितृव्यात् शंकराद्विभुः ।
उर्द्ध्वपुंड्रं सदा बिभ्रत् गोपीचंदनसंभवम् ॥८॥
कंठे तुलसिकामालां द्वे मुद्रे बाहुमूलयोः ।
शंखचक्रे च बिभ्राणो गोपीचंदननिर्मिते ॥९॥
पित्रैव कृपया दत्तं तत्सर्वं तिलकादिकम् ।
रङ्गनाथकुलं सर्वं रामकृष्णमुपासते ॥१०॥
स्वतो हि शोभनो बालस्तिलकेनाधिकं बभौ ।
ततो वेदोदितां दत्वा गुरवे गुरुदक्षिणाम् ॥११॥
चरणौ शिरसा नत्वा चाशिषं जगृहे गुरोः ।
अवस्थां प्रापितो भट्टस्तदा द्वादशवार्षिकीम् ॥१२॥

के लिए विदा किया। वे सब चन्द्रसुधा-पानकारी चकोर की भाँति बालक को देखते हुए तृप्त न हुए। अब बालक ने गायत्रि व्रत को धारण कर निज पितृव्य शंकर जी से वेद-वेदान्त आदि शास्त्र का अध्ययन किया। उस समय बालक कपाल में उर्द्ध्वपुण्ड्रतिलक, कंठ में तुलसीमाला, बाहुमूल में गोपीचन्दन से शंख-चक्र चिन्हों को धारण करता था जो कि पिता के द्वारा प्राप्त किया था। इसका कारण यह था कि रङ्गनाथवंशज मात्र ही रामकृष्ण के उपासक थे ॥१-१०॥

आप स्वभाव से ही सुन्दर बालक थे, उस पर फिर माला-तिलकों से अधिक शोभायमान लगते थे। आपने विद्याध्ययन के उपरान्त वेदविधि के साथ गुरुदक्षिणा प्रदान कर श्रीगुरुचरणारविन्द में प्रणामादि

अथ नारायणो धीमान् पितुर्गृहमुपागतः ।
ब्रजप्रदीपिकां नाम ग्रन्थं स कृतवान् मुदा ॥१३॥
(धर्मप्रवर्त्तकान् ग्रन्थान् चक्रे बहुविधान् विभुः)
अथ नारायणो धीमान् स्नातुं गोदावरीं गतः ।
सर्व-पापहरां नृणां भगवत्प्राप्तिकारिणीम् ॥१४॥
तत्र स्नात्वा विधानेन ध्यात्वा देवं जनार्द्दनं ।
प्राणानायम्य गायत्रीं जजाप प्रीतिमानसः ॥१५॥
स्तोत्रं भगवतः साक्षात् श्रीकृष्णस्य पपाठह ।
सर्वत्रैव हरिं पश्यन् शुचिरेकाग्रमानसः ॥१६॥
अकस्मात् ददृशे भट्टो राधया सहितं हरिम् ।
स्थितं वयसि कैशोरे भृत्यानुग्रहकातरम् ॥१७॥
पीताम्बरं घनश्यामं मंदस्मितमुखाम्बुजम् ।
किरीटिनं कुंडलिनं शिरो मुकुटभूषितम् ॥१८॥

कर आशीर्वाद प्राप्त किया। उस समय उनकी अवस्था बारह वर्ष की थी ॥११-१२॥

अब वे अपने पितृगृह में आये वहाँ आपने ब्रजप्रदीपिकानामक ग्रन्थ तथा धार्मिक अनेक ग्रन्थों की रचनाएं कीं ॥१३॥

इसके अनन्तर बुद्धिमान् नारायणजी भगवत्प्राप्तिकारिणी समस्त पापहारिणी श्री गोदावरी के स्नान के लिये गये तथा वहाँ यथा विधि स्नान-प्राणायाम के साथ भगवान् का ध्यान करके गायत्री का जाप और श्रीकृष्ण के विविध स्तोत्र पढ़ते हुए सर्व्व प्रकार उनका दर्शन करने लगे ॥१४-१६॥

आपने अकस्मात् कैशोर अवस्था में स्थित, भृत्यानुग्रहकारी, पीताम्बरधारी, घनश्याम, मन्दहास्य से शोभायमान मुख वाले, किरीट-कुण्डलधारी, मयूर मुकुट से शोभायमान मस्तक वाले, वेणुविनोदी, मनोहर, बनमाली, राधिका युक्त श्रीहरि को तथा उनके बाम भाग में वि-

वेणुवाद्यरतं हृद्यं हारिणं वनमालिनं ।
वामांगे राधिकां तस्य किशोरीं कनकद्युतिम् ॥१९॥
नीलाम्बरधरां दिव्यां शशिकोटिनिभाननाम् ।
सर्वाभरणशोभाढ्यां ददर्श मुनिपुंगवः ॥२०॥
सहसोत्थाय हृष्टांगो ननाम दंडवत् भुवि ।
तुष्टाव परया भक्त्या हर्षगद्गदया गिरा ॥२१॥
नमस्ते देवदेवेश नमस्ते भक्तवत्सल ।
श्रीराधिकासमेताय नमो नित्यविहारिणे ॥२२॥
ततः प्रसन्नो भगवान् भक्ताय भक्तवत्सलः ।
मंत्रोपदेशं कृतवान् सर्वसिद्धिप्रदं प्रभुः ॥२३॥
आज्ञापयामास मुदा पुरा संकल्पितं हि यत् ।
त्वं हि दीक्षित भक्तो मे नारदोऽसि मुनीश्वरः ॥२४॥
रङ्गनाथकुले जातो मदाज्ञा-परिपालकः ।
गच्छ शीघ्रं ब्रजं वासलीलास्थानं प्रकाशय ॥२५॥
मत्स्वरूपं लाडिलेयं ते दास्ये बालरूपिणम् ।
एतद्रूपेण ते वत्स सेवितेन त्वयानिशम् ॥२६॥

राजमाना, किशोरी, सुवर्णकान्तिवाली, नीलाम्बरधारिणी, दिव्यातिदिव्य कोटि चन्द्रमा की भाँति कान्तिवाली, समस्त भूषण से भूषिता, श्रीराधिका जी को भी देखा ॥१७-२०॥

उस समय उन के अंग-प्रत्यंग प्रफुल्लित हो गये वे पृथ्वि पर गिर कर हर्ष गद्गदवाणी से परमप्रीति के साथ स्तुति करने लगे ॥२१॥

हे देवदेवेश ! हे भक्तवत्सल ! आपको नमस्कार। हे श्रीराधिका के साथ नित्यविहारी ! आपको नमस्कार है ॥२२॥

तब भक्तवत्सल भगवान प्रसन्न होकर उनके लिए सर्व्वसिद्धिप्रद मन्त्र का उपदेश करने लगे जो कि पूर्व संस्कृत है। प्रभु ने आज्ञा दी कि-भो ! नारायण ! तुम तो दीक्षाप्राप्त भक्त, मुनीश्वर नारद हो।

ब्रजलीलारहस्यं च कथयिष्यामि तेऽनघ ।
लाडिलेयं गृहीत्वैनं ब्रजं गच्छस्व नारद ॥२७॥
काममोहनमूर्त्तिस्तु राधाकुंडे विराजते ।
राधिका-सहितस्तत्र दर्शनं ते प्रदास्यति ॥२८॥
ततः कतिपये काले बलदेवो हलायुधः ।
रेवतीसहितो देवः प्रकटस्ते भविष्यति ॥२९॥
द्वाविष्टौ तव भूयास्तां बलदेव-सुमोहनौ ।
ततश्चाहं बृहत्सानौ लाड़लीलालनामभाक् ॥३०॥
प्रकटस्ते भविष्यामि प्रसिद्धे ब्रह्मपर्वते ।
इत्युक्त्वा भगवान् कृष्णो दत्वा देवर्षये स्वयं ।
लाडिलेयस्वरूपं च तत्रैवांतरधीयत ॥३१॥
अथ नारायणो भट्टो लाड़िलेयं समर्चयन् ।
ब्रजस्य मार्गं जग्राह गृहीत्वा बालरूपिणम् ॥३२॥
देवर्षेरंकम.स्थाय कृपया भट्टरूपिणः ।
बालरूपः स्वयं कृष्णो मार्गे लीलां चकारह ॥३३॥

तुमने रंगनाथ कुल में जन्म लिया है । तुम तो मेरी आज्ञा के परिपालक हो अब तुम शीघ्र ही ब्रज में जाकर लीलास्थलियों का प्रकाश करो । देखो यह लाडिलेय नामक बालमूर्त्ति मेरा ही स्वरूप है । इसे लेकर इसी रूप में निरन्तर सेवा करो । यह स्वरूप तुमको ब्रज-लीला के रहस्यों को बतलाएगा । तुम इसी मूर्त्ति के साथ ब्रज के लिये चले जाओ । वहाँ राधाकुण्ड में मदनमोहन मूर्त्ति विराजमान है । वे राधिका के साथ तुमको दर्शन देंगे । उसके कुछ काल उपरान्त रेवती के साथ हलायुध श्रीबलदेव जी भी प्रकट होंगे । ये दोनों तुम्हारे इष्ट हैं और बरसानु पर्वत में मैं लाडिली-लाल नाम से प्रकट होऊँगा । श्रीहरि इस प्रकार कह कर श्रीभट्ट जी को अपनी लाडिलेय मूर्ति को दे अन्तर्द्धान हो गये ॥२७-३१॥

अतिकोमलपादाभ्यां अग्रे गच्छन् शनैः शनैः ।
क्वचित् फलं क्वचित् पुष्पं क्वचित् क्रीडनकं च यत् ॥३५॥
जग्राह दीक्षितानीतं हठं कृत्वा पुनः पुनः ।
विश्रामं कृतवान् कृष्णो लघुवृक्षतले क्वचित् ॥३६॥
एवं वहु विधां लीलां कुर्वाणो निर्जने वने ।
दृष्ट्वा मार्गागतान् पांथान् मूर्त्तिरूपं चकारह ॥३७॥
एवं कृष्णं सेवमानो दीक्षितः स दिने दिने ।
वर्षद्वयेन सार्द्धेन प्राप्तो गोवर्द्धनं गिरिम् ॥३८॥
गोवर्द्धनसमीपे तु श्रीकुंडमति-शोभनम् ।
काममोहनमूर्त्तिस्तु राधायास्तत्र राजते ॥३९॥
वृंदावनात् समागत्य श्रीकुंडस्थानमास्थितः ।
कृष्णदासब्रह्मचारी तं सिसेव हरिं प्रभुम् ॥४०॥
सनातनश्च गोस्वामी कृष्णसेवारतस्तदा ।
मंदिरे राजभोगार्थं पाकसेवां चकारह ॥४१॥

अनन्तर भट्ट जी वालरूपी लाडिलेय का यथा विधि पूजन करते हुए उन्हें साथ में लेकर ब्रज के लिये चल दिये । मार्ग में लाडिलेय जी बालक रूप से प्रकट होकर भट्टजी की गोद में बैठ जाते थे कभी कोमल चरणों से आगे आगे चलते हुए उनके दिए फल-पुष्प-क्रीडा द्रव्यों को ग्रहण करते थे । कभी हठ करते हुए वृक्षों की छाया में बैठ जाते थे ॥३२-३६॥

इस प्रकार निर्जनबन में बहुतसी लीलाएँ करते थे परन्तु मनुष्यों के आने पर मूर्त्ति रूप धारण कर लेते थे ॥३७॥

इस प्रकार गमन करते हुए अढ़ाई वर्ष में श्रीगोवर्द्धन में पहुँचे जहाँ अतिशय शोभायमान श्रीराधाकुण्ड है एवं जहाँ श्रीराधिका के साथ मदनमोहनजी विराजमान हुए थे । वृन्दावन से उस समय कृष्णदासब्रह्मचारी जी आकर वहाँ पर श्रीमदनमोहन जी की सेवा कर रहे थे तथा

कृत्वा पाकं विधानेन श्रीकृष्णाग्रे समर्पयत् ।
ततश्चाचमनं दत्वा ताम्बूलं च समर्पयत् ॥४२॥
राजभोगानन्तरे हि दर्शनार्थं समागताः ।
तत्रत्याश्च जनाः सर्वे देशांतरनिवासिनः ॥४३॥
कृष्णदासब्रह्मचारी चारात्तिं कृतवान् प्रभोः ।
राजभोगं समाप्यैवं स्तुत्वा स्तोत्रेण तं प्रभुम् ॥४४॥
प्रस्वापयामास मुदा जलपात्रं निधाय च ।
वध्वा कपाटौ द्वारस्य पाकशालां गतो द्विजः ॥४५॥
कृष्णदासब्रह्मचारी गोस्वामी यत्र संस्थितः ।
इन्दुलेखावतारोऽयं ब्रह्मचारी द्विजोत्तमः ॥४६॥
विभभाज प्रसादं स वैष्णवेभ्यः समं ततः ।
स च नारायणो भट्टो गोवर्द्धनसमीपगः ॥४७॥

(बाल मूर्त्तेस्तु कृष्णस्य)

राजभोगं समाप्यैवं स्वापयामास तं विभुम् ।
प्रतस्थे शिरसि न्यस्य सिंहासनवरं प्रभोः ॥४८॥

श्रीसनातनगोस्वामि जी स्वयं राजभोग के लिये पाक बनाया करते थे। क्योंकि श्रीकृष्ण के सुख के लिये ही उनकी अखिल चेष्टाऐं थीं। पाक के अनन्तर राजभोग लगाने के पश्चात् ब्रह्मचारी जी ने ताम्बूलादि अर्पण कर आरती उतारी तथा मदनमोहन जी को शयन कराकर चारों ओर से आए हुए तथा वहाँ के निवासियों को प्रसाद वितरण किया। उस समय मन्दिर के किवाड़ बन्द थे और भट्टजी गोवर्द्धन के समीप किसी निर्जन स्थान में बालरूपी श्रीकृष्ण की सेवा-पूजा तथा भोगादिक कार्य्य में संलग्न थे। वे यथा विधि भोगराग देकर श्रीकृष्ण को सिंहासन पर बैठा कर उसे अपने मस्तक में रख जब राधाकुण्ड में मदनमोहन जी के मन्दिर के पास पहुँचे वहाँ किवाड़ को बन्द देखकर बैठ गये और चिन्ता करने लगे कि प्रभु का दर्शन किस कारण से नहीं हुआ। वहाँ

श्रीकुंडे प्राप्तवान् भट्टो मन्दिरे मोहनस्य हि ।
दिदृक्षुः कृष्णचन्द्रस्य दक्षिणाज्ञाप्रणोदितः ॥४९॥
तावत् कपाटौ संबद्धौ शैयायां स्वपितः प्रभुः ।
दीक्षितो मन्दिरे स्थित्वा चिंतयामास नारदः ॥५०॥
दर्शनं मे कथं नासीत् प्रभोराज्ञा वृथा न हि ।
मामुवाच पुरा कृष्णो दास्ये ते दर्शनं त्विति ॥५१॥
क्षणमात्रं स्थितो भट्टो ध्यानस्तिमितलोचनः ।
तावत् कपाटावुद्घाट्य मोहनो द्वारमास्थितः ॥५२॥
श्रीराधासहितः साक्षात् कृपया भक्तवत्सलः ।
तं दृष्टात्मप्रभुं भट्टः कृतांजलिपुटः शनैः ॥५३॥
तुष्टाव देवदेवेशं दंडवत् पतितो भुवि ।
भगवानपि तं दोर्भ्यां समुत्थाप्य मुदान्वितः ॥५४॥
हस्तं तच्छिरसि न्यस्य स्वागतं चेत्युवाचह ।
नारदोऽसि मुनिश्रेष्ठ मदाज्ञापरिपालकः ॥५५॥
मन्त्रं तेऽहं प्रदास्यामि सर्वसिद्धिकरं परम् ।
संप्रदाय-रहस्यं ते ब्रह्मचारी वदिष्यति ॥५६॥
इन्दुलेखावतारोऽयं रङ्गदेवी त्वयि स्थिता ।
अतो ब्रह्मर्षिणा तेन सख्यं ते च भविष्यति ॥५७॥

गोदावरी में उन्होंने मुझको दर्शन देने को कहा था। आप क्षणकाल नेत्र मूँद कर ध्यान करने लगे कि किवाड़ इकाइक खुल गये। भक्तवत्सल श्रीहरि राधिका के साथ द्वारदेश में आकर खड़े हो गए। भट्टजी उन्हें देख कर चरणों में गिर गये तथा अनेक प्रकार की स्तुति करने लगे। भगवान् अपने हाथों से उन्हें उठा कर मस्तक में हाथ रख स्वागत प्रश्न पूछने लगे। तुम तो मुनिश्रेष्ठ नारद हो। मेरी आज्ञा के परिपालक हो ॥३८-५५॥

सर्व्वसिद्धिप्रद मन्त्र का मैं तुमको उपदेश करता हूँ। ब्रह्मचारी जी

इत्युक्त्वा भगवान् कृष्णो युगलोपासनात्मकम् ।
मन्त्रं दक्षिणकर्णेऽस्य दीक्षितस्य ददौ हरिः ॥५८॥
श्रीराधा प्रददौ तस्मै भक्तिं च प्रेमलक्षणाम् ।
ततः कपाटशब्दं च संश्रुत्वा वैष्णवास्तु ते ॥५९॥
ब्रह्मचारी सगोस्वामी तत्राजग्मुस्त्वरान्वितः ।
ददृशुस्तत्र ते सर्वे राधाया सहितं हरिम् ॥६०॥
दीक्षिताय प्रवोचंतं भक्ताय भक्तवत्सलम् ।
ततः स विस्मयाविष्टो ब्रह्मचारी समास्थितः ॥६१॥
कृतांजलिपुटः कृष्णं दंडवत् प्रणनामह ।
तमुवाच ततः कृष्णः कृष्णदासं स्वयं हरिः ॥६२॥
कृष्णदास शृणुष्वैतत् यत्त आज्ञापयाम्यहम् ।
मदाज्ञया समायातो नारदोऽयं मुनीश्वरः ॥६३॥
मानुषं वपुरास्थाय सेवको मम सर्वदा ।
रङ्गनाथकुले जातो ब्रजोद्धारं करिष्यति ॥६४॥
सख्यं कुरुष्व चैतेन दीक्षितेन मदाज्ञया ।
संप्रदायरहस्यं च वदस्वैनं सुविस्तरम् ॥६५॥

तुमको सम्प्रदायरहस्यों को बतावेंगे । वे इन्दुलेखा सखी के अवतार हैं । तुम में रंगदेवी की स्थिति है, अतः दोनों में सख्यभाव होगा ५६-५७॥

श्रीहरि ने ऐसा कह कर उन्हें युगलमन्त्र का उपदेश किया तथा श्रीराधिका ने प्रेमभक्ति का प्रदान किया । हठात् इस प्रकार किवाड़ों का शब्द सुनकर श्रीसनातनगोस्वामीजी, कृष्णदासब्रह्मचारीजी तथा अन्य वैष्णव समाज उपस्थित हुआ एवं श्रीराधिका के साथ मदनमोहन जी का दर्शन कर सभी परम विस्मय को प्राप्त हुए ॥५८-६०॥

दण्डवत् प्रणत ब्रह्मचारि जी से श्रीहरि ने कहा-भो ! कृष्णदास ! सुनो ये मुनीश्वर नारद हैं जो मेरी आज्ञा से मनुष्य शरीर को धारण कर आये हुए हैं, आपने रंगनाथकुल में जन्म लिया है तथा मेरी लुप्त

इत्युक्त्वा भगवान् कृष्णः सिंहासनमुपाविशत् ।
राधया सहितः साक्षात् सर्वेषां पश्यतां सताम् । ६६॥
दीक्षितश्च मुदं लेभे मन्त्रं प्राप्य परं हरेः ।
ब्रह्मचारी दीक्षितश्च मिलित्वाथ परस्परम् ॥६७॥
तस्थतुर्मन्दिरे तस्मिन् कृष्णाज्ञापरिपालकौ ।
संप्रदायरहस्यं स ब्रह्मचारी जगादह ॥६८॥
यथा भगवताज्ञप्तं दीक्षिताय महात्मने ।
सनातनश्च गोस्वामी परं हर्षं जगामह ॥६९॥
ततः प्रसादं बुभुजुः सर्वे ते वैष्णवैः सह ।
सायं काले समायातास्तत्रत्या ग्रामवासिनः ॥७०॥
श्रुत्वा भट्टं समायातं प्रत्यक्षं मोहनं तथा ।
कृतांजलिपुटाः सर्वे भट्टस्याग्रे समास्थिताः ॥७१॥
नारदो भगवान् साक्षात् समायातो भवानिह ।
यस्य मन्त्रोपदेशार्थं प्रत्यक्षो भगवानभूत् ॥७२॥
आज्ञां कुरुस्व नो ब्रह्मन् वयं किं करवाम ते ।
तानुवाच ततो विप्रो राधाकुंडोऽत्र वर्त्तते ॥७३॥

ब्रजधाम का उद्धार करेंगे । तुम मेरी आज्ञा से इन के साथ सख्य करो तथा पात्रसात् (अंगीकार) करके इन्हें सम्प्रदायरहस्यों को सिखाओ ॥६१-६५॥

श्रीहरि इस प्रकार कह कर सिंहासन पर बैठ गये तथा यह देख भट्ट जी परम आनन्द को प्राप्त हुए । उसके उपरान्त ब्रह्मचारी जी तथा भट्ट जी दोनों एक साथ रहने लगे । भट्ट जी ब्रह्मचारी जी से सम्प्रदाय-रहस्यों को सीखने लगे जिस से सनातनगोस्वामीजी परम हर्ष को प्राप्त हुए । सायंकाल होने लगा, यह बात सर्व्वत्र फैल गई । सभी ग्रामवासी-गण उपस्थित हुए तथा भट्टजी से कहने लगे आप तो साक्षात् श्रीनारद जी हैं, आज्ञा दीजिये हम सब आपकी कुछ सेवा करें । भट्टजी ने कहा-

दशहस्तांतरे भूम्यां कृष्णक्रीडासमुद्भवः ।
खननं वै प्रकर्त्तव्यं भूमेः सर्वैः समं ततः ॥७४॥
ततः प्रांजलयः सर्वे प्रोचुर्वै ग्रामवासिनः ।
न श्रुतं नैव दृष्टं नः कुण्डं तत्र महामुने ॥७५॥
कथं प्रतीतिरस्माकं जायते वद नः प्रभो ।
नारायण उवाचेदं श्रृणुध्वं भो व्रजौकसः ॥७६॥
दशहस्तांतरे भूम्यां नादिरेकात्र वर्तते ।
दध्याच्छादनमृत्पात्रं नादि सा हि प्रकीर्त्तिता ॥७७॥
खंडसोपानयुग्मं च यदि तत्र भवेज्जनाः ।
राधाकुण्डं हि तत्रैव जानीध्वं नात्र संशयः ॥७८॥
इत्युक्तास्ते जनाः सर्वे तथा चक्रुः समागताः ।
चिन्हं प्राप्तं हि तत्सर्वं निर्दिष्टं मुनिना च यत् ॥७९॥
सर्वेषां हि मनुष्याणां विश्वासः समजायत ।
मेनिरे दीक्षितं सर्वे नारदं मुनिपुंगवम् ॥८०॥
राधाकुण्डं कृष्णकुण्डं संगमं यत्तयोर्मिथः ।
सर्वं प्रकाशयामास द्वापरे समभूद् यथा ॥८१॥

यहाँ राधाकुण्ड विराजमान है परन्तु लुप्त है। यहाँ दस हाथ पृथ्वी खोदने पर प्रकट हो जायगा। तब सभी ब्राह्मणगण हाथ जोड़ विनय करने लगे-किसी ने सुना नहीं किसी ने देखा भी नहीं। किस प्रकार प्रतीत होगा ? भट्ट जी कहने लगे-भो ! ब्राह्मण समाज ! देखिये। धरती पर दस हाथ नीचे एक नाँद है जो कि दही से आच्छन्न मृण्मयपात्र विशेष है। उसमें खण्डित दो सीढियों का टूकडे हैं। यह राधाकुण्ड है, उस में कोई सन्देह नहीं है। ब्रजवासियों ने यथा निर्देश धरती खोद कर मुनि कथित चिन्हों को देखा तथा विश्वास करने लगे। तब से वे सब ही श्रीभट्ट जी को साक्षात् नारदरूप जानने लगे ॥६६-८०॥

अनन्तर श्यामकुण्ड, दोनों कुण्ड का संगमस्थान प्रकटित हुए

कथां च श्रावयामास राधाकुण्डसमुद्भवाम् ।
अष्टम्यां कार्तिके मासि सर्वतीर्थागमं यथा ॥८२॥
तत्सर्वं श्रावयामास राधाकुण्डे पुरा भवत् ।
ततो वै मानसीगंगां कुसुमाख्यं सरस्ततः ॥८३॥
गोविंदकुण्डनामानं पुण्यं चन्द्रसरोवरम् ।
अन्ये चापि महाकुण्डाः कृष्णक्रीडा-समुद्भवाः ॥८४॥
सर्वान् प्रकाशयामास छन्नान् भूम्यंतरे स्थितान् ।
ततश्च मथुरां प्राप्य विश्रामस्थानमुत्तमम् ॥८५॥
जन्मस्थानं हरेश्चापि वसुदेवस्य मन्दिरम् ।
कारागारं च कंसस्य रङ्गभूमिं तथैव च ॥८६॥
यत्र कंसवधस्थानं राज्यलाभो हि यत्र च ।
उग्रसेनस्य तत्सर्वं कथयामास दीक्षितः ॥८७॥
यज्ञस्थानं वलेर्यत्र तपः स्थानं ध्रुवस्य च ।
यत्र वै तपसः स्थानं नारदस्यापि शांततुः ॥८८॥
सप्तसामुद्रिकं कूपं महाविष्णुं गतश्रमम् ।
दीर्घविष्णुं च वाराहं भूतेश्वरगर्त्तेश्वरौ ॥८९॥

जैसा कि द्वापर में हुआ था। भट्ट जी ने राधाकुण्ड उत्पत्ति की कथा तथा उसमें कार्तिक-कृष्णाष्टमी में समस्त तीर्थों के आगमन की कथा सुनायी। उसके पश्चात् आपने मानसीगंगा, कुसुमसरोवर, गोविन्द-कुण्ड, चन्द्रसरोवर तथा अन्यान्य कृष्णक्रीडासमुद्भूत भूलुप्त समस्त कुण्डों का प्राकट्य किया। आगे मथुरापुरी में जाकर वहाँ श्रीकृष्ण-जन्मस्थान, बसुदेव जी का मन्दिर, कंसकारागार, रंगभूमि, कंसवधस्थान, उग्रसेन का राज्य प्राप्तिस्थान, बलीमहाराज की यज्ञभूमि, ध्रुव जी का तपस्यास्थल, नारदतपस्यास्थल शान्तनुमहाराजजी का तपस्यास्थल, सप्तसामुद्रिककूप तथा महाविष्णु, गतश्रमनारायण, दीर्घविष्णु, वाराह-

महाविद्यां तथा देवीं देवानन्यान् समं ततः ।
कुण्डं सिंदूरिकाख्यं च कुण्डानन्यांस्तथैव च ॥९०॥
बहुवार्षिककालेन उच्छिन्ना ब्रजदेवता: ।
पुन: प्रकाशिता: सर्वे दीक्षितेन महात्मना ॥९१॥
ततो महावनं प्रागात् स्थानं नन्द-यशोदयो: ।
बालक्रीडनकं यत्र चक्रे कृष्ण: स्वयं प्रभु: ॥९२॥
युग्मार्जुनगतिस्थानं पूतनापतनस्थलं ।
शकटासुर-तृणावर्तगतिस्थानं च यत्र हि ॥९३॥
ब्रह्माण्डदर्शनं स्थानं रमणाख्यं स्थलं तथा ।
गोपीनां च गृहं गत्वा कृष्णश्चौर्यं चकार यत् ॥९४॥
भांडविस्फोटनं यत्र चक्रे मातु: स्वयं हरिः ।
दाम्ना चोलूखले बद्धो मात्रा भक्तप्रियंकरः ॥९५॥
क्रीडास्थानं च तत्सर्वं श्रीकृष्णबलदेवयो: ।
गोपानां चैव तत्सर्वं कथयामास नारद: ॥९६॥
ततो वृन्दावनं प्रागात् लीलास्थानं प्रकाशयन् ।
कृष्णरासस्थलं तत्र यत्र वंशीवट: स्थित: ॥९७॥

मुक्त, भूतेश्वर, गर्त्तेश्वर, महाविद्यादेवी और-और देवताओं तथा सिन्दूर नामक कुण्ड, बहुवर्षों से लुप्त ब्रजदेवता, कुण्ड समूह का प्रकाशन भी किया ॥८९-९१॥

उसके उपरान्त आप महावन के लिये पधारे वहाँ नन्दयशोदा के निवासस्थान, श्रीकृष्ण के बालक्रीडनकस्थान, यमलार्जुन गतिस्थान, पूतनाखाल, शकटासुरगतिस्थान, तृणावर्त्त गतिस्थान, ब्रह्माण्डघाट, रमणवन, गोपियों का गृह समूह, जहाँ-जहाँ श्रीकृष्ण ने चौर्य्यलीला की थी, दधीवर्त्तन, फोड़ने का स्थान, ऊखल में माता के द्वारा श्रीकृष्ण का बंधनस्थान, श्रीकृष्ण-बलदेव तथा गोपियों के क्रीडास्थली समूह का उद्धार करने लगे ॥९१-९६॥

कालीयदमनस्थानं वधस्थानं वकस्य च ।
अघासुरवधस्थानं केशिनश्च वधस्थलम् ॥९८॥
वत्सोपगूहनं यत्र ब्रह्मणा च कृतो हरेः ।
गोपवत्सस्वरूपं च श्रीकृष्णेन कृतो यत: ॥९९॥
ब्रह्मणा च स्तुतो यत्र साक्षात् कृष्णः परात्परः ।
अन्यलीलास्थलं चापि यत्र यत्र हरे: प्रभो: ॥१००॥
तत्सर्वं कथयामास नारदो भट्टरूपधृक् ।
नन्दघाटं चीरघाटं दुर्वासः स्थलमेव च ॥१०१॥
यज्ञपत्नी-समातीतभोजनस्थलमेव च ।
अरिष्टस्य वधस्थानं शंखचूडवधस्थलम् ॥१०२॥
पंचयोजनविस्तीर्णे श्रीमद्वृन्दावने हरिः ।
चकार विविधां लीलां गो-गोपी-गोपबालकैः ॥१०३॥
गोवर्द्धनो गिरिर्यत्र ब्रह्माख्य: पर्वतस्तथा ।
रुद्रपर्वत-नामा च बज्रकीलक एव च ॥१०४॥
कामसेनिगिरि र्यत्र सुवर्णाचल एव च ।
विदम्बाख्यः पर्वतश्च अटोराख्यगिरिस्तथा ॥१०५॥
सखीगिरिश्च यत्रैव ललिताजन्मनः स्थलम् ।
अन्ये च पर्वताः पुण्या: श्रीमद्वृन्दावने स्थिताः ॥१०६॥

इसके अनन्तर आप वृन्दावन के लिये पधारे वहाँ लीलास्थलियों को प्रकट भी किया। श्रीकृष्ण की रासस्थली जहाँ कि वंशीवट विराजमान है, कालीयदमनस्थान, वकासुरवधस्थान, अघासुरबधस्थान, केशीवध-स्थान, ब्रह्मा के द्वारा गोवत्स गोपनस्थान, श्रीकृष्ण के द्वारा गोवत्स स्वरूप धारण करने का स्थान, ब्रह्मस्तुतिस्थान समूह का परिचय कराते हुए पुनः नन्दघाट, चीरघाट, दुर्व्वासास्थान, यज्ञपत्नियों के द्वारा श्रीकृष्ण का भोजनस्थान, अरिष्टासुरवधस्थल, शंखचूडबधस्थान, पञ्चयोजन विस्तीर्ण श्रीवृन्दावन चत्र में श्रीहरि ने गो-गोपी गीपबालकों के

नन्द-गोपादयो यत्र वासं चक्रुः समंततः ।
गोपीनां जन्मनः स्थानं तत्तद्ग्रामेषु वर्त्तते ॥१०७॥
गोपानां जन्मनः स्थानं तत्तद्ग्रामेषु वर्त्तते ।
संकेतादिवटा यत्र षोडशैव समंततः ॥१०८॥
विहाराख्यवनं यत्र बलो रासं चकारह ।
रासस्थलं तु कृष्णस्य वनेषूपवनेषु च ॥१०६॥
धर्मार्थ-काममोक्षाख्यं वनेषु च समंततः ।
प्रतिवने चाधिवने कृष्णो रासं चकारह ॥११०॥
अष्टौ भेदा वनानां च प्रत्येकं द्वादशैव हि ।
वनानि स्युश्च सर्वाणि समस्त-व्रजमण्डले ॥१११॥
सर्वत्रैव हरे र्लीला विविधा लिखिताः स्फुटाः ।
कुंजेष्वपि निकुंजेषु श्रीमद्भास्करसूनुना ॥११२॥
वृन्दावने च बहुश पंचयोजनविस्तृते ।
बालपौगंडरूपेण किशोरेण तथैव च ॥११३॥
श्रीकृष्णेन कृताः लीलाः स्थलं तत्तत् प्रकाशितम् ।
कुंडांश्च पर्वतान्वीथी गोपीनां गमनागमे ॥११४॥
पादचिन्हांकितान् सर्वान् नारायण उवाचह ।
प्रौढानाथो भवत् कृष्णो यत्र शैय्यास्थितो हरिः ॥११५॥

साथ बिविध लीलाऐं की हैं। जहाँ गोवर्द्धन पर्वत, ब्रह्मगिरि (बरसाना) रुद्रगिरि, (नंदग्राम) बज्रकीलक, कामसेनि पर्वत, सुवर्णाचल, विदम्बपर्वत, अटोरापर्वत, सखीगिरि (जहाँ ललिताजन्मस्थान) तथा अन्यान्य पवित्र पर्वत विराजमान हैं, और भी जहाँ नन्दादि गोपों का वासस्थान, उन-उन ग्रामों में गोपियों का जन्मस्थान, गोपों का जन्मस्थान, चार ओर संकेतादि षोलहवट, बलदेवजी के रासस्थल विहारबन, वन उपबनों में श्रीकृष्ण के रासस्थल, धर्म अर्थ-काम-मोक्ष नाम के बनों में तथा प्रतिबन अधिबनों में श्रीकृष्ण के रासस्थल, इस प्रकार ब-

पादचिन्हं हरेर्यत्र पावनं च सरोवरं ।
मुक्तानां वपनस्थानं हाहूर्यत्रैव संस्थितः ॥११६॥
दधिमंथानकं यत्र यशोदयाः प्रियं हरेः ।
अक्रूरागमनस्थानमुद्धवागमनस्य च ॥११७॥
गवां दोहनकस्थानं गोष्ठी रामस्य बालकैः ।
नन्दस्य मन्दिरं यत्र गोपबालैः समं हरिः ॥११८॥
बालक्रीडनकं चक्रे बलदेवेन संयुतः ।
सर्वं प्रकाशितं स्थानं श्रीमद्भास्करसूनुना ॥११६॥
बृहत्सानूद्भवे तीर्थान् कथयामास दीक्षितः ।
वृषभानुसरो यत्र कीर्त्याश्चैव सरोवरम् ॥१२०॥
प्रियाकुण्डं च यत्रैव दोहिनीकुंड एव च ।
चिकित्साख्यं वनं यत्र दानलीलास्थलं तथा ॥१२१॥
मानलीलास्थलं चापि विलासस्थलमेव च ।
संकोचबीथिका यत्र बहवो रासमंडलाः ॥१२२॥
कुंडा बहुविधा यत्र तत्तल्लीलासमुद्भवाः ।
गह्वरं वर्त्तते यत्र क्रीडनार्थं हरेः सदा ॥१२३॥

जमण्डल के प्रत्येक बारह भेद प्राप्त आठों वनों में और कुंज-निकुंजों में सर्वत्र श्रीहरि के लीलास्थल विराजमान हैं, जिन्हें भास्करनन्दन श्रीनारायणभट्ट ने अपने ग्रन्थों में लिखे हैं। पञ्चयोजन विस्तीर्ण वृन्दावन में श्रीहरि ने बाल पौगण्ड तथा कैशोर स्वरूप में नाना लीलाएँ की हैं। उन सब स्थलों को आप नारायणभट्ट ने प्रकट किया है तथा कुण्ड, पर्वत, गोपियों के जाने आने का मार्ग, पाद चिन्ह से अंकित स्थानों का परिचय दिया है और भी आपने चरणपाहाड़ी, पावनसरोवर, मुक्तारोपणस्थल, हाहूस्थान, दधीमन्थनस्थान, अक्रूरागमनस्थान, उद्धवबन, गोदोहनस्थान, बाल्यक्रीडास्थान समूह का प्रकट किया। अनन्तर बरसाने में वृषभानुसरोवर, कीर्त्तिदासरोवर, प्रियाकुण्ड, दोहिनीकुण्ड, चिकित्साबन,

उच्चग्रामे तथा कुडाः कृष्णक्रीडासमुद्भवाः ।
यत्रैव देहकुंडोऽस्ति सदा पाप-प्रणाशनः ॥१२४॥
श्यामकुंडः प्रियाकुंडः गोपीपुष्करणी तथा ।
सखीकूपोऽस्ति यत्रैव ललितानिर्मितः स्वयम् ॥१२५॥
गुहाऽपि वर्त्तते यत्र स्खलिनी वर्त्तते शिला ।
गोपीनां पादचिन्हानि मृगतृष्णासमानि वै ।
तथा संकेतकस्थाने कृष्णकुंडोऽति शोभनः ॥१२६॥
विह्वलादेविका यत्र विह्वलाख्यः सरस्तथा ।
यत्रैव विह्वला जाताः श्रीकृष्णादित्रिमूर्त्तयः ॥१२७॥
राधिकाद्यास्तथा तिस्रः गोप्यो वै विह्वलाः स्थिताः ।
कदंबलतिकां नीत्वा स्थिताः पाषाणमूर्त्तयः ॥१२८॥
रेवतीसहितो देव उच्चग्रामे विराजते ।
त्रिवेणी राजते यत्र श्रीकृष्णाज्ञासमुद्भवा ॥१२९॥
ललिताया विवाहश्च श्रीकृष्णेनाभवत् यतः ।
उलूखलं च यत्रैव अटोरगिरिमूर्द्धनि ॥१३०॥
काम्यके च वने तीर्थाः सर्वे भट्ट-प्रकाशिताः ।
चतुरशीति संख्यकाः कुंडा लीलासमुद्भवाः ॥१३१॥

दानलीलास्थान, मानलीलास्थान, विलासगढ़, संकोचमार्ग (खोरिसाँकरी) गहवरबन, ऊँचाग्राम में-देहकुण्ड, श्यामकुण्ड, प्रियाकुण्ड, गोपीपोखरा, सखीकूप, खिसलनी शिला, चरणचिन्ह, संकेतस्थान, कृष्णकुण्ड, विह्वलादेवी, त्रिवेणी, ललिताविवाहस्थानादिक, कामवन में-काशीकुण्ड, गयाकुण्ड, विमलसरोवर, भोजनथाली, चरणपहाड़ी, बाराहकुण्ड, अयोध्याकुण्ड, कुरुक्षेत्र, पञ्चतीर्थ, यज्ञकुण्ड, धर्म्मकुण्ड, गरुड़सरोवर, गोपालकुण्ड, लंकाकुण्ड आदिक कुण्ड समूह, आदिबद्री, व्यासलिंहासन, नरनारायण, गंगा, अलकनन्दा, चतुर्भुजादि मूर्त्ति, वाराहादिक मूर्त्ति, धर्म्मराज आदि देवमूर्त्ति, पञ्चपांडवों की मूर्त्ति, मनसादेवी, कामेश्वर,

चतुरशीतिस्तंभाश्च विश्वकर्मविनिर्मिताः ।
काशीकुंडो गयाकुंडो विमलाख्यसरोवरः ॥१३२॥
(भोजनस्थालिका यत्र पादचिन्हं तथा गिरौ)
श्रीवाराहस्य कुंडश्च अयोध्याकुंड एव च ।
कुरुक्षेत्रादि कुंडाश्च पंचतीर्थ्यादयस्तथा ॥१३३॥
यज्ञकुंडो धर्मकुंडो गरुडाख्यं सरस्तथा ।
गोपालकुंडनामा च लंकाकुंडस्तथैव च ॥१३४॥
रासलीला कृता यत्र श्रीकृष्णेन बलेन च ।
अन्ये च वहवः कुंडाः प्रसिद्धाः काम्यके वने ॥१३५॥
आद्यं वदरिकानाथस्थलं संराजते गिरौ ।
व्यासलिंहासनं यत्र चक्रे वेदान् महामुनिः ॥१३६॥
नरनारायणौ यत्र चक्रतुस्तप उत्तमम् ।
गंगा चालकनंदा वै कुंडे यत्र समास्थिता ।
नरनारायणौ देवौ स्थितौ यत्र मुनीश्वरौ ॥१३७॥
चतुर्भुजादयो देवा श्रीवाराहादिमूर्त्तयः ।
धर्मराजादयो देवाः पांडवानां च मूर्त्तयः ॥१३८॥
अन्ये च वहवो देवाः काम्यके ये प्रकाशिताः ।
उच्छिन्ना बहुकालेन श्रीभट्टेन प्रदर्शिताः ॥१३९॥
मनसादेविकाद्याश्च शिवाः कामेश्वरादयः ।
शोपेश्वरादयश्चापि तथा चक्रेश्वरादयः ॥१४०॥

वृन्दावन में गोपेश्वर, गोवर्द्धन में चक्लेश्वर, (चक्रेश्वर) बलदेवादि विग्रह जो सब बज्रनाभ के द्वारा स्थापित हुए थे तथा बहुवर्षों से उच्छिन्न होकर लुप्त हो गये थे इन सब को प्राकट्य करने लगे। इनमें से प्राय तो कुछ मूर्त्ति कुण्डों से कुछ कुओं से प्राप्त हुईं थीं तथा कुछ तो धरती के भीतर दबी हुई पड़ी थीं। व्रजमण्डल की भूमी इक्कीस योजन की है। दक्षिण तथा उत्तर के मध्य में यमुना जो बह रही है। यमुना

स्थापिता वज्रनाभेन बलदेवादिमूर्त्तयः ।
उच्छिन्ना बहुकालेन ते सर्वे लोपमास्थिताः ॥१४१॥
प्रदर्शिताः समुद्धृत्य भट्टनारायणेन हि ।
केचित् कुंडांतरे प्राप्ताः कूपमध्ये तथा परे ॥१४२॥
पृथिव्याश्चांतरे केचित् देवा एवं समास्थिताः ।
व्रजमंडलभूगोलमेकविंशतियोजनम् ॥१४३॥
अस्मिन् सर्वे स्थिताः तीर्थाः यमुनादक्षिणोत्तरम् ।
सार्द्ध-द्वयसहस्राणि तीर्थानि व्रजमंडले ॥१४४॥
तीर्थान्तराणि चान्यानि प्रत्यक्षं दर्शितानि च ।
श्रीकृष्णाज्ञामनुप्राप्य भट्टनारायणेन हि ॥१४५॥
नान्यो भट्टान्महाप्राज्ञो व्रजस्योद्धारको भवत् ।
तस्यैवानुग्रहेणान्ये जानंति व्रजमंडलम् ॥१४६॥
तेनैव शिक्षिता सर्वे यात्रां कुर्वन्ति मानवाः ।
रङ्गदेवी तु भट्टस्य प्रविष्टा हृदये सदा ॥१४७॥
तेनावेशावतारोऽयं रङ्गदेव्याश्च कथ्यते ।
कः समर्थो व्रजं वक्तुं सर्वं भट्टप्रकाशितम् ॥१४८॥
यथा-ज्ञानमहं वक्ष्ये तस्यैवानुग्रहेण हि ।
श्रीनारायणभट्टेन वृहद्व्रजगुणोत्सवे ॥१४९॥

जी की दोनों दिशा में ढाई हजार तीर्थ मौजूद हैं। वे तीर्थ तथा अन्यान्य तीर्थ समस्त ही अब प्रकटित होने लगे। श्रीकृष्णचंद्र की आज्ञा से प्रेरित होकर श्रीमन्नारायणभट्ट जी ने इस तरह समस्त तीर्थों का प्राकट्य किया है। व्रज का उद्धार करने में भट्ट जी के अतिरिक्त और कोई बुद्धिमान नहीं हुआ है। उनके ही अनुग्रह से यह व्रजमण्डल प्रकट हुआ तथा सब कोई व्रजमण्डल को जानने लगे हैं। तभी से भट्टजी से सीखकर सब कोई व्रजयात्रा कर रहे हैं। उनके हृदय में रङ्गदेवी का प्रवेश है, इसलिये वे रङ्गदेवी के आवेशावतार हैं। व्रज का वर्णन करने के लिये

सर्वं सुविस्तरं प्रोक्तमन्यग्रन्थेषु चैव हि ।
अतश्चरितवर्येऽस्मिन् संक्षिप्तं लिखितं मया ॥१५०॥
यदा संकेतकं स्थानं ययौ भास्करनन्दनः ।
न ददर्श प्रतिच्छन्नं लता-गुल्म-समाकुलम् ॥१५१॥
वटच्छायां समाश्रित्य कुत्र शैय्यास्थलं हरेः ।
इति चिंताकुलो भट्टश्चिंतयामास नारदः ॥१५२॥
श्रीराधारमणौ तत्रायतुर्दंडघोटकौ ।
बालस्वरूपिणौ दिव्यौ क्रीडतौ तावितस्ततः ॥१५३॥
भूमौ कुंडलिकां कृत्वा लकुटेन गतौ ततः ।
भट्टनारायणो ज्ञात्वा राधाकृष्णौ हि तावुभौ ॥१५४॥
दृष्ट्वा कुंडलिकां तत्र संकेतं ज्ञातवान् मुनिः ।
मनसा प्रणतिं कृत्वा स्तुतिं चक्रे च मानसीम् ॥१५५॥
मन्दिरं कारयामास यत्र शैय्यास्थलं हरेः ।
संकेतदेविका यत्र शृङ्गारस्थलमेव च ॥१५६॥

किसकी शक्ति है ? अतः आपने ही कृपा करके सब का प्रकट किया है। भट्टजी ने निज विरचित वृहत् व्रजगुणोत्सव नामक ग्रन्थ में तथा अन्यत्र भी इन सब बातों को विस्तार के साथ वर्णन किया है। अतः मैं यहाँ संक्षेप से ही लिखता हूँ ॥१८-१५०॥

जब आप संकेतस्थल में गये तब वहाँ श्रीराधाकृष्ण का शैय्यास्थान जो कि लता-गुल्मों से आच्छादित था। उसे देख चिन्तायुक्त होकर एक वृक्ष के नीचे बैठ गये और सोचने लगे। आपने देखा कि उस समय श्रीराधिका और रमण बालस्वरूप में दण्डघोटक (डंडोंओं को घोड़ा बनाकर) रूप में बन कर इधर उधर क्रीडा करते हुए खेल करते हुए भूमी पर लकुट (लठिया) के द्वारा कुण्डलिया (गोलाकार) खींच कर वे चल दिये। आप इस इसारे से सभी बात जान गये। वही शैय्यास्थान है ऐसा जान कर आपने वहीं मन्दिर निर्म्माण कराकर

राधारमणमूर्त्तिश्च यत्र स्थाने विराजते ।
एवं ब्रजेषु सर्वत्र लीलास्थानं प्रकाशयन् ॥१५७॥
श्रीकुंडे हि स्थितिं चक्रे मोहनस्य समीपतः ।
लाडिलेयः स्वयं तस्य प्रत्यक्षो वर्त्तते प्रभुः ॥१५८॥
आज्ञापयामास मुदा लीलास्थानं निजं सदा ।
सप्त ग्रन्थांस्तथा गोप्यान् चकार मुनिपुंगवः ॥१५९॥
ब्रजभक्तिविलासं च चक्रे ब्रजप्रदीपिकां ।
ब्रजोत्सवचंद्रिकां च तथा ब्रजमहोदधिम् ॥१६०॥
ब्रजोत्सवाल्हादिनीं च बृहत्ब्रजगुणोत्सवम् ।
ब्रजप्रकाशनामानं चक्रे भास्करनन्दनः ॥१६१॥
वामनाख्यान् तथैवान्यान् ग्रन्थान् कालांतरे प्रभुः ।
उच्चग्रामं समास्थाय चक्रे भास्करनन्दनः ॥१६२॥
ब्रजयात्रा-क्रमो यत्र कुंडानां मन्त्र-देवताः ।
बाराहेण पुरा प्रोक्तं भूम्यै कृतयुगे च यत् ।
ब्रजमण्डलमाहात्म्यं मुनिना कथितं हि तत् ॥१६३॥

राधारमण विग्रह की स्थापना की । वहीं संकेतदेवी तथा शृङ्गारस्थल भी विराजमान है । इस प्रकार आप ब्रज के समस्त तीर्थों का प्राकट्य कर श्रीराधाकुण्ड में गये तथा वहाँ भी मदनमोहनजी के निकट निवास करने लगे । तीर्थप्राकट्य समय में संग में जो लाडिलेय बालस्वरूप मूर्त्ति रूप में थे वे ही आपके लिए तीर्थों को सूचना करा देते थे । आप ने ही राधाकुण्ड पर ब्रजभक्तिविलास, ब्रजप्रदीपिका, ब्रजोत्सवचन्द्रिका, ब्रजमहोदधि, ब्रजोत्सवाल्हादिनी, बृहत्ब्रजगुणोत्सव तथा ब्रजप्रकाश नामक सातों ग्रन्थ की रचना की है इस प्रकार कालान्तर में भी आपने ऊँचेग्राम में बावन ग्रन्थों का निर्म्माण किया था । आप अनेक ग्रन्थों के रचयिता हैं । जिन में ब्रजयात्रा का क्रम, कुण्डों के मन्त्र-देवता आदिक सविस्तर वर्णित हैं । जिनका वर्णन सत्ययुग में पृथिवी के लिये वाराह

इत्थं कृष्णपरायणो मुनिवरो लीलास्थलं श्रीहरेः
प्रत्यक्षं कृतवान् जगत्त्रयहितं कृष्णाज्ञया संभवः ।
कृत्वा कामविमोहनाय प्रणतिं श्रीलाडिलेयं प्रभुं
नीत्वा ग्राममथान्वगाद्गिरिवरे ह्युच्चाभिधानं ततः ॥१६४॥

इति श्रीनारदावतारनारायणभट्टाचार्यकुलोद्भवगोस्वामीरघुनाथात्मज गोस्वामीजानकीप्रसादविरचिते श्रीचरितामृते श्रीमदनमोहनप्रादुर्भावे श्रीराधाकुंडादि-सर्वतीर्थप्रकाशकथनो नाम द्वितीय आस्वादः ॥२॥

अथ नारायणो धीमानुच्चग्रामं समागतः ।
सर्वं प्रकाशयामास कुंडान् स्थानानि चापि हि ॥१॥
एकदा श्रावणे मासि मध्यान्हादुत्तरे दिने ।
ग्रामस्य दक्षिणे गावो वृक्षमूलमुपाश्रिताः ॥२॥
मेघा इतस्ततो याता अम्बरो निर्मलो भवत् ।
चंडरश्मिस्तदा सूर्यः सर्वतः प्रतपन् बभौ ॥३॥
न गच्छन्ति ततो ग्राम्या गृहात् घर्मभयात् बहिः ।
वनेऽपि वर्त्तते तत्र सिंहव्याघ्रादिजं भयम् ॥४॥

भगवान् ने किया था, उन समस्त माहात्म्यों को भट्टजी ने विस्तार के साथ अब कहा है । इस प्रकार कृष्णपरायण मुनीश्वर ने त्रिजगत् में श्रीकृष्ण की लीलास्थलियों को उनकी ही आज्ञा से साक्षात प्रकट किया है । अब आप मदनमोहन जी को प्रणाम कर लाडिलेय स्वरूप को संग में लेकर ऊँचेग्राम में पधारे ॥१५४-१६४॥

एक समय श्रावण मास मध्यान्ह के पश्चात् ग्राम के दक्षिण दिशा की तरफ कुछ गौएँ एक वृक्ष के नीचे छाया में बैठी हुई थीं । मेघों के इधर उधर संचालन से आकाश निर्म्मल था । सूर्य्य के प्रचण्ड ताप से मनुष्य बाहिर नहीं निकल सकते थे । जंगल में शेर, बघेर का भी भय

गवां समीपे भट्टोऽपि वृक्षमूलाश्रितो भवत् ।
एका गौस्तासु चोत्थाय जगाम गहनं वनम् ॥५॥
सिंहव्याघ्रादिजं चापि भयं सा गौर्न मन्यते ।
न चोष्णत्वं च चंडांशो र्मन्यते सा कथंचन ॥६॥
तस्या मार्गं हि जग्राह दीक्षितो मुनिसत्तमः ।
सा गौः शनैः शनैस्तत्र प्रविवेश महद्वनम् ॥७॥
हिंसवृक्षसमाकीर्णं छन्नमार्गं च पादपैः ।
दीक्षितोऽनुययौ तस्याः नारायण उदारधीः ॥८॥
हिंसवृक्षतले तस्याः सुस्राव बहुशः पयः ।
गौरांगो बालकश्चैकः पयः पीत्वा व्यलीयत ॥९॥
पुनस्तत्राययौ सा गौर्यत्र गावः समास्थिताः ।
भट्टनारायणश्चापि तं दृष्ट्वा दिव्यबालकम् ॥१०॥
हृदि मेने ह्ययं बालो रामो भवति निश्चितम् ।
तस्थौ तत्रैव धर्मात्मा हृदि ध्यानपरो मुनिः ॥११॥
किञ्चिद्राऽभ्यन्तरे देवः स्वप्नं तस्मै ददौ हली ।
पृथिव्या ह्यन्तरे वत्स मम मूर्त्तिर्विराजते ॥१२॥

था । भट्ट जी वहाँ निर्भय बैठे हुए थे । आपने देखा कि उन गौओं में से एक गौ उठकर-बघेरों का भय न करती हुई हींस वृक्षों से आच्छादित घोर बन के भीतर चली गई । भट्टजी इस कौतुक देखने के लिए उसके पीछे-पीछे छिप कर चलने लगे । आपने देखा कि एक गौरवर्ण सुन्दर बालक वहाँ आकर बैठ गया । और वह गौ खड़ी होकर दूध बहाने लगी तथा बालक दूध पीकर चल दिया । पुनः गौ भी अपने स्थान पर आ गई । भट्टजी ने जान लिया कि यह बालक श्रीबलदेवजी हैं । आप चिन्तित होकर कुछ तन्द्रायुक्त से हो गये । आपने देखा कि वह बालक आकर कहने लगा कि भट्टजी ! यहाँ पृथ्वी के नीचे मेरी मूर्त्ति दबी हुई पड़ी है । पीठ में शीला लगी रहने के कारण मैं भारा-

रेवतीरमणं मां त्वं प्रकटीकर्त्तुमर्हसि ।
शिलापृष्ठस्वरूपोऽहं भाराक्रांतोऽस्मि दीक्षित ॥१३॥
प्रातःकाले ततो भट्टो जनानाहूय सर्वतः ।
खननं कारयामास भूमेस्तैर्व्रजवासिभिः ॥१४॥
शिलापृष्ठस्वरूपं तत् रेवतीरमणस्य सः ।
गृहीत्वा स्थापयामास मन्दिरे तृणनिर्मिते ॥१५॥
मथुरायां समायातः साहावाकबरछत्रधृक् ।
श्रुत्वा तं नारदं भट्टं प्रत्ययार्थं तदा मुनेः ॥१६॥
स्वकान् प्रस्थापयामास ह्यश्वारूढान् बहून् जनान् ।
उच्चग्रामे समागत्य प्रोचुस्ते मुनिसत्तमम् ॥१७॥
गन्तव्यं भविता शीघ्रं समीपं चक्रवर्तिनः ।
स च नारायणः श्रीमानभिमानविवर्जितः ॥१८॥
प्रतस्थे पादुकारूढः पृष्ठेन मथुरां प्रति ।
नेत्रे चाछाद्य वस्त्रेण ह्यश्वानामग्रतो ययौ ॥१९॥
अश्वारूढाश्च ते सर्वे धावमानाः प्रयत्नतः ।
अग्रे वै दृश्यते भट्टः पश्चादश्वास्तदा भवन् ॥२०॥

क्रान्त हूँ । मैं रेवतीरमण बलदेव हूँ । जहाँ में दूध पी रहा था वहाँ से तुम मेरे को उद्धार करो । प्रभात हुआ, भट्ट जी ग्राम के अनेक व्रजवासियों को संग में लेकर धीरे-धीरे धरती खोदने लगे तब उनको स्वप्नदृष्ट मूर्त्ति प्राप्त हुई । आप एक तृण रचित मन्दिर बनवा कर उस बड़ी में उन्हें पधरा कर सेवा करने लगे ॥१-१५॥

उसी समय चक्रवर्त्ती बादशाह अकबर का मथुरा में आगमन हुआ था, आपने उस बात को सुनकर प्रतीति के लिये लोगों को भेजा । वेगवान् घोड़ों के ऊपर सबार होकर राजदूत वहाँ आकर बादशाह आपको बुलाता है ऐसा सुनाने लगे तब भट्ट जी पैदल ही चलि दिये परन्तु वेगवान् घोड़ों के आगे-आगे जाते थे घोड़े वाले इस बात को देखकर

चकितास्ते विलोक्यैनं प्रोचुः प्रांजलयस्तदा ।
भवता नैव गन्तव्यं वयं गच्छामः पूर्वतः ॥२१॥
इत्युक्त्वा ते गताः सर्वे प्रोचु र्नृपसमीपतः ।
दृष्टो मुनि र्महाराज तादृग्वेशः समागतः ॥२१॥
मार्गे हि स्थापितोऽस्माभिस्तेजसार्क इवापरः ।
किं कर्त्तव्यमिहास्माभिस्तदा ज्ञापय नः प्रभो ॥२२॥
तच्छ्रुत्वाकवरो धीमान् तान् प्राहाज्ञानुवर्त्तिनः ।
स्वस्थानं गच्छतु मुनि र्ब्रज-विक्षेपविह्वलः ॥२३॥
दृष्टो येन हरिः साक्षात् स कं पश्यन् प्रहृष्यति ।
राजदूतास्तदागत्य राजसंदेशमब्रूवन् ॥२४॥
तच्छ्रुत्वा नारदो धीमान् स्वस्थानं पुनरायर्यौ ।
बलदेवस्य सेवां स कृतवान् विधिपूर्वकम् ॥२५॥
टोडर्मलो धनाध्यक्षो कवरस्य बभूव ह ।
दिदृक्षु राजसंदेशात् श्रीभट्ट ग्राममाययौ ॥२६॥
जहर्ष च महाबुद्धिः स दृष्ट्वा भास्करात्मजम् ।
रेबतीरमणं दृष्टा परं हर्षं जगामह ॥२७॥

विस्मित हो गये तथा विनती के साथ भट्ट जी को कहने लगे कि आप आगे मत चलिये, यहाँ ही बैठिये, जब तक कि हम सब बादशाह की आज्ञा लेकर आते हैं। कर्म्मचारियों ने अकबर के पास जाकर समस्त वृतान्त सुनाया। अकबर ने आज्ञा दी कि उन्हें यहाँ मत लाओ उनको आपने स्थान पर ही जाने दो। इधर मध्य रास्ते में से ही आप भट्ट जी स्वयं घर के लिये चल दिये तथा वहाँ विधि के साथ बलदेव जी की सेवा करने लगे। अनन्तर अकबर की आज्ञा से कोषाध्यक्ष टोडर-मल्ल भट्ट जी के पास जाकर प्रसन्नता के साथ कुछ सेवा के लिये प्रार्थना करने लगा। भट्ट जी ने कहा है यदि तुम्हारा आग्रह है तो बल-देव जी का मन्दिर, जिन-जिन कुण्ड-तीर्थों का मैंने प्राकट्य किया है

कृतांजलिपुटो भूत्वा प्रार्थयामास दीक्षितम् ।
आज्ञापय हि मां ब्रह्मन् सेवनार्थं समागतम् ॥२८॥
कृतार्थं कुरु मां स्वामिन्नागतं राजशासनात् ।
तमुवाच द्विजश्रेष्ठो रेवतीरमणस्य हि ॥२९॥
मन्दिरं कुरुताच्छीघ्रं यदि तेऽतिमनोरथः ।
ये च कुंडा मया सर्वे ब्रजमध्ये समुद्धृताः ॥३०॥
सोपानं तत्र कर्त्तव्यं किंचित् किंचित्त्वयानघ ।
हिंडोलकादिकं स्थानं कुत्रचित् रासमण्डलम् ॥३१॥
सर्वत्रैव प्रकर्त्तव्यं भगवत्सेवनं त्वया ।
प्राचीनं मन्दिरं यत्र जीर्णोद्धारं कुरुष्व तत् ॥३२॥
टोडर्मलोऽपि धर्मात्मा तत्सर्वं कृतवांस्तदा ।
सुदृढं कारयामास बलदेवस्य मन्दिरम् ॥३३॥
अथ नारायणो भट्ट आययौ ब्रह्मपर्वते ।
प्रदक्षिणां प्रकुर्वाणः पश्यन् पादपगह्वरम् ॥३४॥
गोपीभावं समास्थाय विचचार महामुनिः ।
अकस्मात् ददृशे तत्र राधिकां बालरूपिणीम् ॥३५॥
अतिकोमलपादाभ्यां लालेन सह गामिनीम् ।
दृष्ट्वा नारायणो भट्टः कृतांजलिपुटो भवत् ॥३६॥

इन सब में ही सिढ़ियों का निर्म्माण, कुण्डों का खनन, हिंडोला तथा रासमण्डपों का निर्म्माण और प्राचीन मन्दिरों का जीर्णोद्धारादि कार्य्य करा दीजिये। भट्ट जी की इस प्रकार आज्ञा पाकर टोडरमल्ल ने आसान रूप सब तीर्थों को बनवाया ॥१९-३३॥

अनन्तर भट्ट जी ब्रह्मपर्व्वत (बरसाना) में पधारे और वहाँ आप गोपीभाव से विचरण करने लगे। एक दिन देखा कि सहसा श्रीलालजी के साथ बालरूपिणी श्रीराधिका जी निज कोमल-सुन्दर चरणों से गमन कर रहीं थीं। तब भट्ट जी हाथ जोड़ कर प्रेममग्न हो खड़े हो गये।

समुवाच तदा राधा कृतार्थस्त्वं द्विजोत्तम ।
मम दर्शनमात्रेण तथाप्याज्ञां करोमि ते ॥३७॥
आगन्तव्यं त्वया ब्रह्मन्नर्द्ध रात्रादनन्तरम् ।
अत्रैव मम मूर्त्तिस्तु वर्त्तते ब्रह्म-पर्वते ॥३८॥
लप्स्यसि त्वं न संदेहो मूर्तिं मे मानुषाकृतिम् ।
इत्युक्त्वा लाड़िलीलालौ तत्रैवांतरधीयताम् ॥३९॥
नारायणोपि तत्रैव समये प्राप्तवान् मुनिः ।
ददर्श युगलं तत्र मूर्त्ति-रूपधरं परम् ॥४०॥
अभिषेकं च कृतवान् भट्टो भास्कर-संभवः ।
पितृभ्यां लालिता राधा लाड़िली सा प्रकीर्तिता ॥४१॥
स्वसुरस्य गृहे कृष्णो लालाख्यो भाष्यते जनैः ।
नामधेयं ददौ भट्टो लाड़िलीलाल इत्यपि ॥४२॥
चकार विधिवत्सेवां श्रीमद्भास्करनन्दनः ।
लाड़िलीलालयो र्नित्यं रेवतीबलयोरपि ॥४३॥

श्रीराधिका जी कहने लगीं तुम मेरी आज्ञा का पालन करो । इस पर्व्वत पर मेरी मूर्त्ति मौजूद है । जो अर्द्ध रात्र में आने पर तुम्हें मिल जायेगी । उसे निकाल कर सेवादि करो । ऐसा कह कर इशारा करती हुई श्रीलाल के साथ वहीं अन्तर्द्धान हो गईं । भट्ट जी यथा निर्देश वहाँ पर गये तथा ढूढ़ने पर दोनों युगल मूर्त्ति को पाकर बड़े प्रसन्न हुए । आप उन दोनों स्वरूपों को यथाविधि अभिषेकादि के द्वारा पधरा कर सेवादि करने लगे । आज कल बरसाने के पर्व्वत पर ही श्रीजी की मूर्त्ति विराजमान है । देश के लाखों मनुष्य उनके दर्शन करते हुय श्रीभट्ट जी के इस महान् उपकार का स्मरण-मनन भी करते हुए कृत्य-कृत्यं हो रहे हैं । पिता माता दोनों से लालित होने के कारण श्रीराधिका जी लाडिली नाम करके कही जाती हैं । और ससुर के घर पर श्रीकृष्णचन्द्र "लाल" करके सबसे बोले जाते हैं । इस प्रकार भट्टजी बर-

ततश्च भास्करो विद्वान् शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ।
विवाहं कारयामास गोपालस्य महात्मनः ॥४४॥
नारायणोऽपि धर्मात्मा विवाहं पितुराज्ञया ।
कृत्वा वहुविधान् धर्मानास्थितो गृहमेधिनाम् ॥४५॥
दामोदरो वभूवाथ पुत्रो नारायणस्य च ।
अतीव सुन्दरो बालः शरच्चन्द्र इवामलः ॥४६॥
पितामहः समादाय तं निनाय निजं गृहम् ।
विद्यां च पाठयामास स्वदेशे भास्करो मुनिः ॥४७॥
अथ तत्रागतो देशात् पुत्रो दामोदरः सुधीः ।
नारायणस्य धर्मात्मा सर्वशास्त्रविशारदः ॥४८॥
आवेशं कुरूते यस्य सुदेवी हृदये सदा ।
दामोदरः स्वपितरं प्रणम्य प्रांजलिः स्थितः ॥४९॥
अन्येऽपि वहवो विप्रास्तैलंगाः समुपागताः ।
तेऽपि नारायणं दृष्ट्वा दंडवत् पतिता भुवि ॥५०॥

साने में लाडिली-लाल तथा ऊँचे ग्राम में रेवतीरमण बलदेव जी की सेवा सँम्भारने लगे ॥३४-४३॥

इसके अनन्तर भास्कराचार्य्य ने अपने बड़े पुत्र गोपाल जी का विवाह कर दिया । धर्म्मात्मा नारायणभट्ट जी भी पिताजी की आज्ञा से अपना विवाह करके गृहस्थाश्रम धर्म्म का पालन करने लगे । कुछ दिवस उपरान्त उनके दामोदरनामक पुत्र हुआ । उन्हें पितामह भास्कराचार्य्य जी ने अपने देश लें जाकर विद्यादि पढ़ाई । दामोदर जी समस्त विद्याओं में विशारद होकर ब्रज में आये तथा पिताजी के पास से युगलोपासना, मन्त्रोपदेश, सम्प्रदायरहस्यों को शिक्षा ग्रहण करने लगे । उन्हें सुदेवी जी का आवेश स्वरूप जानना चाहिये । भट्ट जी अपने पुत्र को वैष्णव धर्म्म में संस्कृत कराकर सम्प्रदायरहस्यों को सिखाने लगे तथा उनको "रेवतीबलदेव" और 'श्रीलाड़िलीलाल" के चरण स्पर्श क-

नारायणः स सर्वेभ्य आशिषं दत्तवान् मुनिः ।
आगतानां च सर्वेषामातिथ्यं कृतवांस्तदा ।
दामोदरं प्रियं पुत्रमंके नीत्वा मुदं ययौ ॥५१॥
तं वै दामोदरं सूनुं नारायण उदारधीः ।
मन्त्रोपदेशं कृतवान् युगलोपासनात्मकम् ॥५२॥
संप्रदायरहस्यं च ददौ तस्मै मुदान्वितः ।
चरणौ स्पर्शयामास रेवतीबलदेवयोः ॥५३॥
लाड़िलीलालयोश्चापि शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ।
तदा मोदो महान् नृणां सर्वेषां समजायत ॥५४॥
वैष्णवाश्च समागत्य सर्वतः सांप्रदायिकाः ।
व्रजप्रकाशकं भट्टं ब्रजाचार्य्यं समर्चयन् ॥५५॥
अभिषेकं च ते सर्वे चक्रुर्भट्टस्य वैष्णवाः ।
मन्त्रैर्वेदोदितैर्दिव्यैर्ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥५६॥
उपायनं ददुस्तस्मै व्रजभक्तिरताश्च ये ।
तदा मोदो महान् नृणां समस्तव्रजमण्डले ॥५७॥

राए। इससे लोगों को बड़ा भारी आनन्द हुआ। उस समय समस्त वैष्णव समाज ने आकर ब्रजप्रकाशकारी श्रीभट्टजी को ब्रजाचार्य्यपद से अभिषिक्त किया और ब्राह्मणों ने बेदमन्त्रों से विधि पूर्वक अभिषेक किया तथा व्रजवासियों ने बिविध उपहार प्रदान किए। कोई-कोई गान करने लगे, कोई नृत्य करने लगे, कोई कोई "मुनीश्वर श्रीभट्टजी धन्य हैं, जिन्होंने व्रज में लुप्ततीर्थों का पुनः दर्शन कराया। हम व्रजमण्डल को नहीं जानते थे। अब जान कार होकर कृतार्थ हुए ऐसा कहकर जयध्वनि करने लगे। सब ने निश्चय किया कि-हम सब के ये ही आचार्य्य हैं, आप ही मनुष्यों को कृष्णभक्ति देने वाले हैं, पूज्य हैं तथा साक्षात् कृष्ण हैं। क्योंकि श्रीभागवत में भगवान ने कहा है-मेरे को ही आचार्य्य रूप से जानना चाहिये। मेरे आचार्य्य स्वरूप को कभी अवमानना

केचिद्गायन्ति नृत्यन्ति वदन्ति च परस्परम् ।
वादित्राणि विचित्राणि वादयन्तो मुहुर्मुहुः ॥५८॥
धन्योऽयं मुनिवर्यस्तु येनायं दर्शितो व्रजः ॥५९॥
कृष्णक्रीडास्थलान्यत्र दर्शितानि बहूनि च ।
किं जानीमो वयं सर्वे देशोऽयं ब्रजमण्डलः ॥६०॥
गोपीगोपयुतो नित्यं यत्र सन्निहितो हरिः ।
जीवन्मुक्ताः कृताः सर्वे वयं हि व्रजवासिनः ॥६१॥
अस्माकं चैव सर्वेषामाचार्य्योऽयं मुनीश्वरः ।
कृष्णभक्तिप्रदो नृणां पूज्यः कृष्ण इवापरः ॥६२॥
यथा भागवते प्रोक्तं स्वयं भगवता वचः ।
आचार्यं मां विजानीयात् नावमन्येत कर्हिचित् ॥६३॥
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥६४॥
श्रीनारायणभट्टोऽपि सिंहासनवरे स्थितः ।
जगृहे पूजनं तेषां कृष्णभक्तिरतात्मनाम् ॥६५॥
ब्राह्मणेभ्यो ददौ श्रीमान् दक्षिणां विपुलां तदा ।
विविधानि च दानानि याचकेभ्यो ददौ मुदा ॥६६॥
तदा ते वैष्णवाः सर्वे प्रणेमुर्भट्टात्मजम् ।
दामोदरं च ते सर्वे गोस्वामीति तदा जगुः ॥६७॥
एकादश्यां भाद्रशुक्लेऽभिषेकः समजायत ।
नारायणस्य भट्टस्य तैः सर्वैः वैष्णवैः कृतः ॥६८॥

नहीं करें। उन्हें मनुष्यबुद्धि से किसी प्रकार निन्दा न करें। क्योंकि आचार्य्य सर्व्वदेव रूप हैं ॥४४-६४॥

इस प्रकार श्रीनारायणभट्ट जी आचार्य्य सिंहासन पर विराजमान होकर भक्तिपरायण सब भक्तों की पूजा ग्रहण करने लगे। आपने ब्राह्मणगण तथा याचकों को विविध दान-दक्षिणा दी वैष्णवों ने श्रीभट्टजी को प्रणाम किया। तब से सब कोई दामोदर जी को गोस्वामी सम्बन्ध

अथैको ब्राह्मणो धीमान् यं वै भाठोठियां विदुः ।
मन्त्रोपदेशं जग्राह श्रीमद्भास्करनन्दनात् ॥६९॥
सेवनाद्बलभद्रस्य बलभद्रीति यं जगुः ।
नारायणदास इति तस्मै नाम ददौ गुरुः ॥७०॥
तस्य शिष्यास्तु बहवो बभूवुः पृथिवीतले ।
गोविंददास इत्येकः श्यामदासस्तथापरः ॥७१॥
कृष्णदासस्तथा चान्यः गंगावायीति चापरा ।
गंगावायी जगन्नाथं प्राप्ता श्रीपुरुषोत्तमम् ॥७२॥
तत्रोवास महाबुद्धिर्मालासेवां चकारह ।
एकदा मालिकाकार्ये विलम्वं समजायत ॥७३॥
सुष्वापाथ जगन्नाथो राजभोगादनन्तरम् ।
गृहीत्वा मालिकां तत्र गंगावायी समागता ॥७४॥
स्वयमुत्थाय देवेशो मालिकां जगृहे प्रभुः ।
ततः प्रभृति सा गंगा प्रसिद्धा पृथिवीतले ॥७५॥

करके कहने लगे । भाद्रशुक्ला एकादशी के दिवस यह अभिषेक हुआ था ॥६५-६८॥

अनन्तर भाठोठिया नामक बुद्धिमान् ब्राह्मण ने भट्ट जी से मन्त्रोपदेश ग्रहण किया । बलभद्र जी की सेवा करने के कारण उनको सब कोई बलभद्री कहने लगे । गुरु भट्ट जी ने ही उनका नाम नारायणदास रखा और उनके बहुत शिष्य प्रशिष्य हुए । गोविन्ददास, श्यामदास, कृष्णदास आदिक भी शिष्य ही थे तथा गंगावाई नाम्नी शिष्या भी थी । यह गंगावाई जगन्नाथपुरी में रहती थी तथा जगन्नाथदेव की माला सेवा किया करती थी । एक समय किसी कारण से माला-बनाने में विलम्ब हो गया । पुजारीगण ने राजभोग के पश्चात् शयन करा दिया था । जगन्नाथजी स्वयं शयन से उठ कर माला ग्रहण करने लगे । तब से गंगावाई जग प्रसिद्धा हुई ॥६९-७५॥

अथ तत्रागतश्चैकः श्रोत्रियो ब्राह्मणोत्तमः ।
बरसानौ पुरेऽवात्सीत्पृथिवीं पर्यटन् गतः ॥७६॥
तीर्थस्नायी महाप्राज्ञो ब्रह्मचारी द्विजोत्तमः ।
न ददर्शात्मनो योग्यं शास्त्रज्ञं ब्राह्मणं गुरुम् ॥७७॥
अशीतिवर्षावस्थाऽभूत् तस्य पर्य्यटतः क्षितिम् ।
श्रुत्वा नारायणाचार्यमुच्चग्रामं स आगतः ॥७८॥
स च नारायणं दृष्ट्वा महाहर्षमुपागतः ।
स प्रणम्य महाप्राज्ञं श्रीमद्भास्करनन्दनम् ॥७९॥
पचार विविधान् प्रश्नान् दुर्विज्ञेयांश्च पंडितैः ।
तत्तत्प्रश्नोत्तरं तस्मै प्रहसन् भास्करात्मजः ॥८०॥
ददौ चान्यं रहस्यं च जगाद मुनिसत्तमः ।
ततः स श्रोत्रियो विप्रो परं विस्मयमापह ॥८१॥
कथं वै समभूदेषा बुद्धिरस्यातिमानुषी ।
इत्येवं चिंतयामास स तदा श्रोत्रियो द्विजः ॥८२॥
क्षणमात्रं द्विजो धीमान् ध्यानस्तिमितलोचनः ।
ददर्श नारदं भट्टं वीणाहस्तं मुनीश्वरम् ॥८३॥
प्रणम्य भुवि कायेन दंडवत् पतितो भवत् ।
सोऽपि शिष्यो भवद्धीमान् दीक्षितस्य महात्मनः ॥८४॥
नारायणदास इति तन्नामापि वभूवह ।
स्वामीति तं तदा सर्वे प्रोचुर्वै वैष्णवाः जनाः ॥८५॥

अनन्तर एक श्रोत्रिय ब्राह्मण समस्त पृथ्वी में तीर्थों का पर्य्यटन करते हुए आत्मतुल्य गुरु न पाकर बरसाने में आये । उनकी अवस्था ८० वर्ष की थी । आप भट्ट जी से ऊँचेग्राम में मिले तथा आपसे विविध प्रश्न पूछने लगे । भास्करनन्दन ने सबका उत्तर दिया तथा अनेक रहस्यों का उन्हें अनुभव कराया। ब्राह्मण ने विस्मित होकर ध्यान से देखा कि भट्ट जी साक्षात् नारद स्वरूप हैं । ब्राह्मण उनके चरणों में गिर गया तथा

अथ नारायणः श्रीमानधिकारं तदादिशत् ।
दामोदराय पुत्राय तस्मै च श्रोत्रियाय वै ।।८६॥
रेवतीरमणस्यापि लाड़िलीलालयोरपि ।
दामोदरस्तु कुरुतादारार्त्तिं देवयोर्द्वयोः॥८७॥
नारायणाख्यदासोऽयं परिचर्य्यां करोतु वै ।
लाड़िलीलालदेवस्य बरसानौ समास्थितः ॥८८॥
दामोदरस्य वंश्या ये भवेयुः श्रोत्रियस्य च ।
एवमेव प्रकुर्वन्तु मदाज्ञापरिपालकाः ।।८९॥
दामोदरस्य शिष्यास्ते भवेयुः श्रोत्रियात्मजाः ।
द्वयोर्मन्दिरयोश्चायं गद्यां दामोदरः स्थितः ॥९०॥
शिक्षां करोतु सर्वेभ्यः शिष्येभ्यो महतां महान् ।
एवमुक्त्वा महाप्राज्ञः समाहूय द्विजोत्तमान् ॥९१॥
दामोदरस्य पुत्रस्य विवाहं समसाधयत् ।
स नारायणदासोऽपि विवाहं कृतवान् द्विजः ।
गुरोराज्ञामनुप्राप्य सेवार्थं नित्यदा हरेः ॥९३॥

उनका शिष्य हो गया । उन्हीं का नाम नारायणदास है । वैष्णवगण उन्हीं को स्वामी नाम से पुकारते थे ॥७६-८५॥

अब श्रीनारायणभट्ट जी अपने पुत्र दामोदर तथा श्रोत्रिय नारायणदास जी को अपना अधिकार देने लगे । "रेवतीरमण" और "लाडिलीलालजी" की आरती सेवा दामोदर करें और नारायणदासश्रोत्री दोनों की अन्य परिचर्य्या किया करें । दामोदर के परिकर तथा श्रोत्री जी के परिकर भी मेरी आज्ञा को इस प्रकार पालन करते रहें । दोनों मन्दिरों की गद्दी पर दामोदर स्थित रहैं तथा सबको शिक्षा देते रहें, ऐसा कह कर उन्होंने अपने पुत्र दामोदर का विवाह कर दिया । नारायणदासजी भी श्रीगुरु आज्ञा से हरिसेवार्थ विवाह करने लगे । दामोदरवंशज तथा श्रोत्रियवंशजों ने यथा निर्देश सेवा का समाधान किया ।

दामोदरस्य वंश्याश्च बभूवुः श्रोत्रियस्य च ।
चक्रुस्तथैव ते सेवां स्वं स्वं धामं न तत्यजुः ॥९४॥
यादृशीं भावनां चक्रे श्रोत्रियः स्वगुरौ मुनौ ।
दामोदरे तथा चक्रुः भावनां श्रोत्रियोद्भवाः ॥९५॥
देवरार्त्तिं प्रकुर्वन्ति दामोदरसमुद्भवाः ।
तदा श्रोत्रियवंश्यास्ते परिचर्य्यापरायणाः ॥
सेवां कुर्वन्ति चेष्टस्य गुरोराज्ञानुसारतः ।
लाड़िलीलालदेवस्य बरसानौ समास्थिताः ॥
अन्ये च बहवः शिष्याः दामोदरगोस्वामिनः ।
ब्रजस्था ब्राह्मणाः सर्वे कृष्णभक्तिरताश्च ये ॥९६॥
मथुरादासनामैको द्विजः सारस्वतो भवत् ।
सर्वशास्त्रार्थतत्वज्ञो हरिभक्तिरतः सदा ॥
सोऽपि शिष्यो भवद्धीमान् भट्ट-नारायणस्य हि ॥९७॥
मीराबाईश्च मथुरादासशिष्या बभूव ह ।
प्रसिद्धं भक्तमाले हि येषां चरितमद्भुतम् ॥९८॥
लोकनाथोऽपि धर्मात्मा द्विजो गौडो बभूव ह ।
दामोदरदास इति चापरो ब्राह्मणोत्तमः ।
शिष्यो महात्मनः सोऽपि भट्टनारायणस्य हि ॥९९॥

तभी बरसाने तथा ऊँचे गाँव से दामोदरवंशज आरती सेवा तथा श्रोत्रियवंशज अन्य परिचर्या करने लगे हैं । नारायणदास-श्रोत्रि जी भट्ट जी को जिस रूप से देखते थे उनके वंशज भी दामोदर गोस्वामीजी को उसी भावना से देखते थे । दामोदरजी के भी बहु शिष्य-प्रशिष्य हुए जो कि वर्त्तमान व्रजवासी ब्राह्मणगण हैं ॥८६-९६॥

इसके अनन्तर मथुरादास नामक सारस्वत ब्राह्मण भट्ट जी के शिष्य हुए । वे सर्ब्बशास्त्र को जानने वाले तथा महान् हरिपरायण थे । उन्हीं मथुरादास की शिष्या परम भक्त मीराबाई थी । जिसका चरित्र

एवं द्वादशशिष्याश्च बभूवु ब्राह्मणोत्तमाः ।
हरिभक्तिरताः सर्वे गृहस्था धर्मतत्पराः ॥१००॥
एको बभूव शिष्यश्च विरक्तानां शिरोमणिः ।
श्रीनारायणभट्टस्य चरणस्याश्रितः सदा ॥१०१॥
बलभद्रीति यं प्राहुर्विप्रं भाठोठियाजनाः ।
नारायणदासइति यन्नामाप्यभवत् क्षितौ ॥१०२॥
तच्छिष्याणां प्रसंगश्च पूर्वं हि समुदाहृतः ।
नारायणो मुनिश्चापि शिष्येभ्यः सेवनं ददौ ॥१०३॥
कस्मैचिद्गोपिकानाथसेवनं प्रददौ मुनिः ।
गोपालसेवनं चापि सेवां चैव विहारिणः ॥१०४॥
सर्वेषामिष्टदेवोऽभूत् बलदेवो हलायुधः ।
गोपालमन्त्रः सर्वेभ्यो राधाकृष्णेति कीर्त्तनम् ॥१०५॥
देहो वापि धनं चापि पुत्र-भार्यादिकं तथा ।
बुद्धिर्बलं मनो विद्याः श्रीकृष्णाय समर्पयेत् ॥१०६॥
हरेर्भक्तिं सदा देहि सेवनं पादपद्मयोः ।
इति संप्रार्थयेद्देवं नैव मोक्षं न चाशिषः ॥१०७॥

भक्तमाल में विस्तृत वर्णन है। लोकनाथ नामक एक धर्म्मात्मा गौड ब्राह्मण तथा दामोदरदास नामक अन्य ब्राह्मण भट्ट जी के शिष्य हुए। इस प्रकार उनके हरिभक्त परायण बारह ब्राह्मणशिष्य हुए हैं। उनमें से भाठोठिया नारायणदास बलभद्री विरक्त थे और सब गृहस्थ थे ॥९७-१०२॥

इसके अनन्तर मुनिराजभट्ट जी अपने शिष्यों में सेवा का भार देने लगे। किसी को गोपीनाथ जी की, किसी को गोपाल जी की, किसी को श्रीविहारी जी की सेवा मिली। परन्तु सब शिष्यों के इष्टदेव बलदेव जी ही थे। स्वयं भट्ट जी ने ही सबको गोपाल मन्त्र की दीक्षा दी थी और प्रति दिन राधाकृष्ण कीर्त्तन करने के लिये सबको उप-

स्वमतं नैव हातव्यं नावमान्यश्च कश्चन ।
जिज्ञासुं शिक्षयेच्छिष्यं स्वमतं नैव सर्वतः ॥१०८॥
असच्छास्त्रं न पश्यन्तु सेव्यं भागवतं सदा ।
विश्वासो गुरुवाक्येषु गुरौ कृष्णमतिस्तथा ॥१०९॥
श्रीकृष्णार्थं प्रकर्त्तव्यं तपो-दान-व्रतादिकम् ।
श्रीकृष्णार्पितवस्तूनां प्रसादत्वेन स्वीकृतिः ॥११०॥
नववस्त्रादिकं वापि ह्यन्नादि च फलादि च ।
सर्वं समर्पयेत् कृष्णे प्रसादं सेवयेद्धरेः ॥१११॥
द्विभुजः सर्वदा सेव्यः श्रीकृष्णो नन्दनन्दनः ।
वेणुवाद्यरतः शश्वत् राधा-गोपीसमन्वितः ॥११२॥
श्रीकृष्णादपरं किंचित् तत्वं नैव च नैव च ।
किंतु रूपान्तरं सर्वं कृष्णस्यैवेति मे मतम् ॥११३॥
चतुर्भुजादिरूपाणि श्रीकृष्णस्य भवन्ति हि ।
इत्यादि बहुशः श्रीमान् सेवारीतिं तथा हरेः ॥११४॥

देश था। आपने शिष्यों से कहा था कि-देह, धन, पुत्र, भार्या बुद्धि, बल, मन, विद्या आदिक सबको श्रीकृष्ण के लिये समर्पित कर दो। श्रीकृष्ण से सदा सर्व्वदा भक्ति की याचना करो। मोक्ष की चाह कभी नहीं करना। अपने मत का परित्याग कभी नहीं करें। किसी का अपमान न करें। जिज्ञासा-कारी शिष्य को ही अपना मत सिखावें। असत् शास्त्र का श्रवण कदापि नहीं करें। निरन्तर श्रीभागवत् का श्रवण करें। गुरुवाक्य में विश्वास तथा उनमें श्रीकृष्ण बुद्धि रखें। श्रीकृष्ण के लिये तपो, दान, व्रतादि करें। श्रीकृष्ण में अर्पित वस्तु का प्रसाद भाव से ग्रहण करें। नवीनवस्त्र, अन्न, फल-मूलादि समस्त श्रीकृष्ण को अर्पण करके ग्रहण करें। सर्व्वत्र द्विभुज, वेणुवाद्यरत, श्रीराधा-गोपियों से सम्वलित नन्दनन्दन की ही सेवा करें। श्रीकृष्ण से पर वस्तु अन्य कोई नहीं है, चतुर्भुजादिक स्वरूप श्रीकृष्ण के रूपान्तर हैं ऐसा जानें। द-

एकादश्युपवासादि-निर्णयं च जगादह ।
दशमी-वेधरहिता कर्त्तव्यैकादशी-तिथिः ॥११५॥
दशमीवेधसंयुक्ते द्वादश्यां समुपोषणम् ।
अरुणोदयवेलायां वेधो द्रष्टव्य एवहि ॥११६॥

(अष्टौ महाद्वादश्यो ज्ञातव्याः ।)

महती द्वादशी चेत् स्यात् शुद्धेप्येकादशीदिने ।
तदा चैकादशीं त्यक्त्वा द्वादश्यां व्रतमाचरेत् ॥११७॥
निर्णयार्थं च द्रष्टव्या ग्रन्थ-साधनदीपिका ।
व्रतानां निर्णयो यत्र कथितः सर्व एव हि ॥११८॥
सप्तमीरहितं ग्राह्यं व्रते जन्माष्टमीदिनम् ।
वैष्णवे च व्रते सर्वा पर-विद्धा स्मृता तिथिः ॥११९॥
इति सर्वान् महाप्राज्ञः शिक्षां चक्रे पुनः पुनः ।
गुरोराज्ञामनुप्राप्य तथा चक्रुश्च ते तदा ॥१२०॥
रंकः कश्चित् समागत्य लालदासाभिधो वणिक् ।
श्रीनारायणभट्टस्य चरणोऽस्याश्रितो भवत् ॥१२१॥
पादश्रिताय वैश्याय चाशिषं प्रददौ मुनिः ।
तव वंशे द्विपंचाशत् पुरूषा धर्मतत्पराः ॥१२२॥

शमी वेधा से रहित एकादशी व्रत का पालन अवश्य करें। दशमी वेधा रहने पर द्वादशी व्रत करें। अरुणोदय में वेधा माने। शुद्धा एकादशी में महाद्वादशी रहने पर एकादशी का त्याग कर द्वादशी व्रत करें। इसके निर्णयार्थ मत्कृत साधनदीपिका ग्रन्थ का अवलोकन करें। सप्तमी रहित जन्माष्टमी का व्रत किया करें। इस प्रकार उनसे शिक्षा प्राप्त होकर शिष्य-समाज सबका यथा विधि पालन करने लगे ॥१०३-१२०॥

लालदास नामक एक गरीब वणिक ने भी भट्टजी के चरणों में शरण लिया। भट्टजी उसे आशीर्वाद देने लगे कि तुम्हारे वंश में बावन पीढ़ी तक धर्म्मपरायण तथा धनी होंगे और बलदेवजी की सेवा करेंगे।

भाग्यवन्तो भविष्यन्ति प्रसादान्मे न संशयः ।
साधुकारा हि ते सर्वे बलसेवापरा यदि ॥१२३॥
एतच्छ्रुत्वा प्रहृष्टोऽभूत् लालदासाभिधो वणिक् ।
चरणौ शिरसा नत्वा मुनेर्धाम गतो निजम् ॥१२४॥
लालदासस्य वंश्यास्ते तथैव धनिनो भवन् ।
बलदेवस्य ते सेवां यावच्चक्रुः समाहिताः ॥१२५॥
अन्ये द्विजाः सनाढ्याश्च केचिद्गौडास्तथा परे ।
शिष्या बभूवुस्ते सर्वे दीक्षितस्य महात्मनः ॥१२६॥
व्रजतीर्थेषु सर्वत्र कुंडे कुंडे द्विजोत्तमाः ।
सर्वे बभूवुस्ते शिष्या दामोदरगोस्वामिनः ॥१२७॥
अथ नारायणाचार्यः श्रीकृष्णाज्ञाप्रणोदितः ।
ब्राह्मणं सुन्दरं बालं कृष्णवेषं विधाय च ॥१२८॥
राधावेषं तथा चैकं गोपीवेषांस्तथापरान् ।
रासलीलां स सर्वत्र कारयामास दीक्षितः ॥१२९॥
रङ्गदेवी सदाविष्टा दीक्षिते वर्त्तते यतः ।
रासोत्सवे च गोपीनां समीपे दीक्षितो बभौ ॥१३०॥

सेवा से ही सब कुछ मंगल होता है। ऐसा सुन कर लालदास प्रसन्न हो गया तथा गुरु-चरणारविन्द में नमस्कार कर अपने घर को चला गया। तब से लालदास के वंशज धनी और बलदेवजी की सेवा में रत हुए। इस प्रकार और सब सनाढ्य-गौड़ ब्राह्मणगण भट्टजी के शिष्य होने लगे। दामोदरजी के भी व्रज में तथा सर्व्वत्र अनेक शिष्य प्रशिष्य हुए हैं ॥१२१-१२७॥

अनन्तर भट्ट जी श्रीकृष्ण की आज्ञा से प्रेरित होकर सुन्दर ब्राह्मण बालकों को राधावेश, कृष्णवेश, गोपीवेश, गोपवेश, सखावेशादि के द्वारा सज्जित करा कर व्रज में रासादिलीलाओं का अनुकरण कराने लगे। क्योंकि आप में रंगदेवी का आवेश रहता है। कहीं गोचारण-

कुत्रचित् गोपवेषेन गोवत्सान् चारयन् हरिः ।
तथा लीलां च कृतवान् कालीयदमनादिजाम् ॥१३१॥
सांझिकारचनं क्वापि राधागोपीभिरेव च ।
अन्या वहुविधा लीला या याः कृष्णश्चकारह ॥१३२॥
सर्वलीलानुकरणं कारयामास नारदः ।
यत्नापुर्देवताः सर्वे मुनयो वा धृतव्रताः ॥१३३॥
तत्प्रापुर्मनुजाः सर्वे लीलादर्शनजं सुखम् ।
यस्मिन् दिने यदृक्षे वा कृष्णो लीलां चकारह ॥१३४॥
तस्मिन् दिने स्थले तस्मिन् भट्टो भास्करसंभवः ।
कारयामास तां लीलां बालैः कृष्णादिवेषिभिः ॥१३५॥
ततः प्रभृति सर्वत्र वनेषूप वनेषु च ।
व्रजे तीर्थेषु कुंजेषु रासलीला वभूवह ॥१३६॥
अथ नारायणाचार्यो व्रजयात्रां चकारह ।
सर्वैश्च वैष्णवैर्विप्रैरन्यैश्चापि जनैः सह ।१३७॥
तीर्थे तीर्थे च सर्वत्र चाष्टभेद-वनेषु च ।
द्वादशेष्वापि कुंजेषु षोडशाख्यवटेषु च ॥१३८॥

लीला, कहीं कालीयदमनलीला, कहीं साँझीलीला, कहीं दानलीला, कहीं मानलीला आदिक होने लगीं । जिस दिवस, जिस नक्षत्र, जिस स्थल में जो जो लीला हुई थी उसी दिवस, उसी नक्षत्र, उसी स्थल पर उसी-उसी का अनुकरण होने लगा । आज पर्य्यन्त व्रज में तथा अन्यत्र रासलीला का अनुकरण हो रहा है । लाखों नरनारी लीलानुकरण (रासलीला) का दर्शन कर भाव समुद्र में निमग्न हो जाते हैं तथा भट्ट जी को हृदय से धन्यवाद देते रहते हैं ॥१२८-१३६॥

अनन्तर श्रीभट्टजी वैष्णवगण के साथ व्रजयात्रा करने लगे । यात्रा दो प्रकार की है वनयात्रा तथा व्रजयात्रा । बाराहपुराण की विधि से यथा पूर्व्वक स्नान-दान-पूजा-भजन-परिक्रमा-स्तुति-उपवास-विश्रामा-

वनयात्रा स्मृता चैका व्रजयात्रा तथा परा ।
द्वे चैव कृतवान् श्रीमान् नारदो भट्टरूपधृक् ॥१३९॥
तीर्थे तीर्थे तथा स्नानं स कृत्वा विधिपूर्वकम् ।
पश्यन् सर्वत्र देवेशं वहुरूपैः स्थितं प्रभुम् ॥१४०॥
तीर्थाधिष्ठातृदेवांश्च संपूज्य मन्त्रपूर्वकम् ।
वनाधिष्ठातृदेवांश्च पूजयामास तत्ववित् ॥१४१॥
यथाचारो यथा शैया नियमो यत्र यत्र हि ।
यथा दानं यथा ध्यानं तत्तथैव चकारह ॥१४२॥
वाराहेण यथा प्रोक्तं विश्रामस्थानमेव यत् ।
तथैव कृतवान् भट्टः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥१४३॥
कृतार्थान् कृतवान् लोकान् व्रजयात्रा-प्रसंगतः ।
व्रजयात्रां समाप्यैवं लोकानाज्ञापयत् प्रभुः ॥१४४॥
एवमेव प्रकर्तव्यं युष्माभिः कृष्णहेतवे ।
भाद्रे मास्यसिते पक्षे जन्माष्टम्या अनन्तरम् ।
लोकाः सर्वे प्रकुर्वन्ति व्रजयात्रां तदाज्ञया ॥१४५॥
इत्येवं व्रजमध्ये श्रीकृष्णाज्ञाप्रणोदितो मुनिराट् ।
यात्रा-क्रमेण यात्रां कुर्वन् सर्वं जनाय निजगाद ॥१४६॥
माहात्म्यं व्रजभूमेर्यात्रारीतिं च दाननियमांश्च ।
श्रुत्वा तं ते प्रणेमुर्येनेदं दर्शितं हि व्रजधाम ॥१४७॥

दिक करते हुए बारहवन,-बारहउपवन, सोलहवट आदिक भ्रमण कर समाप्त किये । आपने सबको यह सिखाया कि-भाद्रमास जन्माष्टमी व्रत के उपरान्त श्रीकृष्ण-प्रीत्यर्थ प्रतिवर्ष इस प्रकार यात्रा अवश्य किया करें । आज तक भी हजारों व्रजप्रेमीभक्त देश-विदेश से आकर श्रीभट्ट जी के कथनानुसार यात्रा करते रहते हैं तथा व्रजयात्रा के आदि आचार्य्य नारदावतार श्रीनारायणभट्ट जी की जय जय कार करते हैं । १३७-१४७

इति श्रीनारदावतारनारायणभट्टाचार्य्यकुलोद्भवगोस्वामीरघुनाथात्मज गोस्वामीजानकीप्रसादविरचिते श्रीचरितामृते व्रजयात्राप्रसंगो नाम द्वितीय आस्वादः ॥२॥



अथ नारायणाचार्य्य उच्चग्रामे समास्थितः ।
द्वि-पंचाशत् ग्रन्थांश्च चकार मुनिसत्तमः ॥१॥
येषु कृष्णस्य बाल्यादि-लीलाश्च कथिताः क्रमात् ।
कुत्रचित् वैष्णवो धर्मः कुत्रचित् व्रतनिर्णयः ॥२॥
ऊर्द्ध्व पुंड्रस्य माहात्म्यं मालामाहात्म्यमेव च ।
सेवाप्रकारो मूर्त्तीनां तत्तन्मन्त्रविधिस्तथा ॥३॥
बलदेवादि-मूर्त्तीनामुत्सवानां च निर्णयः ।
उत्सवानां विशेषेण सेवा-मन्त्रविधिस्तथा ॥४॥
ग्रहणे दूषिते दिने सेवानिर्णय एव त्त ।
गृहस्थानां तथा धर्माः विरक्तानां तथा क्रमात् ॥५॥
गोपीचन्दनमाहात्म्यं मुद्रा-माहत्म्यमेव च ।
नामांकनस्य माहात्म्यं लिखितं दोचितेन हि ॥६॥

इसके अनन्तर ऊँचेग्राम में आप रहने लगे । वहाँ पर आपने बावन ग्रन्थों का निर्म्माण किया । जिनमें श्रीकृष्ण का बालचरित्र सविस्तर वर्णित है । कहीं पर वैष्णवधर्म्म, कहीं व्रतों का निर्णय, कहीं ऊर्द्ध्व पुण्ड्र तिलक-मालादि धारण की विधि, कहीं सेवा विधि, कहीं मन्त्र-विधि, कहीं वा उत्सवों की विधि, कहीं ग्रहणादि दूषित समय में सेवा-विधि, कहीं गृहस्थ धर्म्म, कहीं विरक्तधर्म्म, कहीं गोपीचन्दन-मुद्रा-नामाङ्कनादि की महिमा ये सब सविस्तर वर्णित हैं । उनमें सम्प्रदाय का रहस्य भी उन्होंने सविस्तार वर्णन किया है । मनमें सर्व्वदा गोपीभाव की भावना कर राधाकृष्ण की सेवा करें । उनके नामादि प्रीति के साथ

रहस्यं लिखितं स्वस्य संप्रदायस्य धीमता ।
गोपीभावेन मनसि राधाकृष्णौ भजेदिति ॥७॥
नामानि कीर्त्तयेन्नित्यं प्रेम्णा श्रीकृष्ण-राधयोः ।
द्विभुजः सर्वदा कृष्णो नित्यं वृन्दावने स्थितः ॥८॥
तथा राधा तथा गोप्यो न त्यजन्ति वनं क्वचित् ।
सर्व-धर्मान् परित्यज्य कृष्णमेवाश्रयेद्बुधः ॥९॥
कृष्णाज्ञया कृतो देव इष्टः संकर्षणः प्रभुः ।
उपासना तु कृष्णस्य राधायुक्तस्य सर्वदा ॥१०॥
कृष्णः सेव्यो हि सर्वेषां जीवानां नात्र संशयः ।
सेवका हि सदा जीवाः सर्वे ब्रह्मादयः खलु ॥११॥
ये वदन्ति महामूढा ऐक्यं जीवस्य ब्रह्मणा ।
साधने तु भवेज्जीवः सिद्धौ ब्रह्मैव जायते ॥१२॥
सर्वे वहिर्मुखास्ते वै कृष्णमाया-विमोहिताः ।
तेषां संगो न कर्त्तव्यो बालबुद्धि-विनाशकः ॥१३॥
कृष्णस्य सेवकाः सर्वे नित्यं ब्रह्म-शिवादयः ।
नित्यं भजन्ति देवेशं शुकाद्याः सनकादयः ॥१४॥

कीर्त्तन करें । श्रीवृन्दावन में श्रीकृष्ण सर्व्वदा द्विभुज स्वरूप में विराजमान हैं । श्रीराधिका और गोप-गोपी समस्त ही द्विभुज स्वरूप हैं । वृन्दावन परित्याग कर श्रीकृष्ण अन्यत्र नहीं जाते हैं । समस्त धर्म्म का परित्याग कर केवल श्रीकृष्ण का आश्रय करना चाहिये । श्रीकृष्ण की आज्ञा से भक्तों के लिए श्रीबलदेवजी कृपा देने के लिये परम उत्सुक रहते हैं । श्रीकृष्ण सबके सेव्य तथा ब्रह्मादिक जीव समूह सेवक हैं । दोनों का ऐक्य कहने वाले लोग महामूढ़ हैं । साधनावस्था में जीव, सिद्धावस्था में ब्रह्म ऐसे कहने वाले वहिर्म्मुख तथा प्रभुमाया से मोहित हैं । उनका संग न करें । क्योंकि उससे बुद्धि नाश हो जाती है । ब्रह्मा-शिवादिदेव प्रभु के नित्य सेवक हैं । शुकसनकादिक भी नित्य प्रभु का

कथं हि पामरो जीवः कृष्णेनैक्यमवाप्नुयात् ।
किंतु माया-विमूढ़ानामैक्यवाक्यं न वै सताम् ॥१५॥
इत्यादि सर्वग्रन्थेषु लिखितं दीक्षितेन हि ।
प्रकटं कृतवान् पूर्वं मध्वाचार्यो हि यन्मतम् ॥१६॥
तदेव कृष्णचैतन्योऽनुससार महाप्रभुः ।
तथा गदाधरः श्रीमान् कृष्णदासस्तथैव च ॥१७॥
तन्मतं विस्तरादूचे नारदो भट्टरूपधृक् ।
येन स्वकीयग्रन्थेषु संप्रदाय-विनिर्णयः ॥१८॥
विस्तरेण समाख्यातः प्रसंगात् तत्र तत्र हि ।
वामनाख्येषु ग्रन्थेषु निर्णयः सर्व एव हि ॥१९॥
भक्तभूषणसंदर्भे तत्वत्रय-विनिर्णयः ।
जीवतत्वं जगत्तत्वं तत्वमीश्वरसंज्ञकम् ।
तत्वत्रयमिति प्रोक्तं मुनिभिस्तत्वदर्शिभिः ।
तथा भक्तिविवेकाख्ये भजनीयविनिर्णयः ॥२०॥
कृष्णनामाधिकं प्रोक्तं नामश्रेष्ठविनिर्णये ।
श्रेष्ठो व्रजस्तथैवोक्तो धामश्रेष्ठविनिर्णये ॥२१॥

भजन करते हैं । पापीजीव किस प्रकार श्रीकृष्ण से एक हो सकता है ? ऐसा ऐक्य सिद्धान्त मायामोहित मूढ़ों का है साधुओं का नहीं है । इन सब बातों को अपने ग्रन्थों में सविस्तर आपने लिखा है । श्रीमन्मध्वाचार्य्य ने पहले जिस मत का प्रचार किया था तथा श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु ने जिस का पुष्ट किया, गधादरपण्डितगोस्वामी तथा कृष्णदासब्रह्मचारी जी जिस मत के अनुसारक हैं उस मत को श्रीभट्ट जी ने गुरु कृष्णदासब्रह्मचारीजी से सीखकर सविस्तर संसार में प्रकाश किया है । आपने स्वकीय ग्रन्थों में ठौर-ठौर सम्प्रदाय निर्णय को विस्तार के साथ लिखा है । "भक्त-भूषणसन्दर्भ" में जीवतत्व-जगत्तत्व तथा ईश्वरतत्व का निर्णय है । भक्तिविवेक में भजनीय वस्तु का निर्णय है । नाम-

श्रेष्ठा सर्वे व्रजस्था हि भक्तश्रेष्ठविनिर्णये ।
ग्रन्थे भक्तिविवेकाख्ये निर्णयास्त्वेवमादयः ॥२२॥
भक्तिरसतरंगिण्यां रसाः सर्वे प्रकाशिताः ।
तथाधिकारिणो भक्ता रसानां समुदाहृताः ॥२३॥
भक्तेः साधनरूपाहि सा च साधनदीपिका ।
यस्यां च बहुधा प्रोक्ता जन्माष्टम्यादिनिर्णयाः ॥२४॥
विधिश्च प्रतिषेधश्च वैष्णवानामनुक्रमात् ।
भृगुवंशे समद्भूतो गोत्रे श्रीवत्ससंज्ञके ॥२५॥
ऋग्वेदी स महाप्राज्ञो भैरवो नाम दीक्षितः ।
तैलंगो दक्षिणे विप्रो मथुरापट्टने पुरे ॥२६॥
वासं चक्रे महाप्राज्ञः सर्वशास्त्र-विशारदः ।
श्रीकृष्णोपासको नित्यं माध्वाचार्यमतानुगः ॥२७॥
तस्यात्मजो भवद्धीमान् रङ्गनाथो महामुनिः ।
प्रसंगो यस्य विख्यातः पुराणे भविष्योत्तरे ॥२८॥
तत्पुत्रो भास्करो भट्टो ग्रन्थ-कर्त्ता मुनि र्महान् ।
तस्य द्वौ तनयौ जातौ रामकृष्णांशसंभवौ ॥२९॥

श्रेष्ठ निर्णय में श्रीकृष्ण नाम की महिमा, धामश्रेष्ठनिर्णय में व्रज का श्रेष्ठत्व, भक्तश्रेष्ठनिर्णय में व्रजवासियों का श्रेष्ठत्व अधिक रूप से वर्णन किया गया है । भक्तिविवेक में ये तीन प्रकरण हैं । भक्तिरसतरङ्गिणी में समस्त रसों का तथा अधिकारियों का वर्णन है । साधनदीपिका में साधन रूपाभक्ति का निर्णय है । जिसमें वैष्णवों के विधि-प्रतिषेध, जन्माष्टमी आदिक व्रतों का निर्णय है ॥१-२४॥

भृगुवंश में श्रीवत्सगोत्री, ऋग्वेदी, भैरव नामक महाविद्वान् दीक्षित तैलङ्ग ब्राह्मण हुए थे । दक्षिण में मथुरा (मदुरा) पत्तन में उनका निवास था । वे श्रीकृष्ण के उपासक तथा मध्वाचार्य्य मतावलम्बी थे । उनके पुत्र बुद्धिमान रंगनाथ नाम से हुए थे । जिनका वर्णन भविष्योत्तरपुराण में

ज्येष्ठो गोपालभट्टोऽभूत् कृष्णभक्तिपरायणः ।
नारायणः कनिष्ठोऽभूत् नारदो मुनिसत्तमः ॥३०॥
श्रीनारायणभट्टोऽसौ प्रख्यातः पृथिवीतले ।
दीक्षितश्च स एवोक्तो दीक्षितं तत्कुलं यतः ।
(भास्करभाष्यं प्रसिद्धं निर्णयग्रन्थाश्च प्रसिद्धाः)
उडुप्यां दक्षिणे देशे मध्वाचार्यो भवच्च यः ॥३१॥
तच्छिष्यशिष्या ये ते वै माध्वसिंहासने स्थिताः ।
तेषां किंचित् प्रवक्ष्यामि संप्रदायप्रनालिकां ॥३२॥
विस्तरस्तु समाख्यातः पुराणे पद्मसंभवे ।

अथ पद्मपुराणमतेन श्लोकाः लिख्यंते--

श्रीमन्नारायणः पूर्वं संप्रदायप्रवर्त्तकः ॥३३॥
तस्य शिष्यो भवद्ब्रह्मा सर्वेषां प्रपितामहः ।
नारदस्तस्य शिष्योऽभूत् ज्ञानसागरचन्द्रमाः ॥३४॥
वेदव्यासो नारदस्य शिष्यो जातो मुनीश्वरः ।
व्यासाल्लब्ध-कृष्णदीक्षो मध्वाचार्यो महामुनिः ॥३५॥
चक्रे वेदान् विभज्यासौ संहितां शतदूषिणीम् ।
निर्गुणाद्ब्रह्मणो यत्र सगुणस्य परिष्क्रिया ॥३६॥

मौजूद है । रंगनाथ जी के पुत्र ग्रन्थकर्त्ता मुनि भास्करभट्ट थे । उनके रामकृष्ण अंश से दो पुत्र हुए । ज्येष्ठ का नाम गोपाल तथा कनिष्ठ यह नारायणभट्ट हैं । दक्षिणदेश में उडुपी कृष्णगद्दी पर श्रीमन्मध्वाचार्य्य-जी विराजमान रहते थे । उनके शिष्य प्रशिष्य माध्वसिंहासन पर बैठ-ते रहते थे,अब उनका वर्णन करता हूँ । माध्वसम्प्रदाय के आदि प्रवर्त्त-क श्रीमन् भगवान् श्रीनारायण हैं । उनके शिष्य पितामह ब्रह्माजी हैं । ब्रह्माजी के शिष्य भक्तिसमुद्र के चन्द्ररूप श्रीनारद, श्रीनारद जी के वे-दव्यास, बेदव्यास जी के शिष्य मध्वाचार्य्य हुए । इन्होंने ही वेद का बिभागकर शतदूषणी संहिता बनाई तथा निर्गुण से सगुण का प्रति-

तस्य शिष्योऽभवत् पद्मनाभाचार्यमहाशयः ।
तस्य शिष्यो नरहरिस्तच्छिष्यो माधवो द्विजः ॥३७॥
अक्षोभस्तस्य शिष्योऽभूत् तच्छिष्यो जयतीर्थकः ।
तस्य शिष्यो ज्ञानसिंधुस्तस्य शिष्यो महानिधिः ॥३८॥
विद्यानिधिस्तस्य शिष्यो राजेन्द्रस्तस्य सेवकः ।
जयधर्मो मुनिस्तस्य शिष्यो मुद्गलमध्यतः ॥३९॥
श्रीमान् विष्णुपुरी यस्य भक्तिरत्नावली कृतिः ।
जयधर्मस्य शिष्योऽभूत् ब्रह्मण्यः पुरुषोत्तमः ॥४०॥
व्यासतीर्थस्तस्य शिष्यो यश्चक्रे विष्णुसंहिताम् ।
श्रीमान् लक्ष्मीपतिस्तस्य शिष्यो भक्तिरसाश्रयः ॥४१॥
तस्य शिष्यो माधवेन्द्रो यज्ञधर्मप्रवर्त्तकः ।
कल्पवृक्षस्यावतारः व्रजधामविनिष्ठतः ॥४२॥
तस्य शिष्योऽभवत् श्रीमान् ईश्वराख्यपुरीर्यतिः ।
कलयामास श्रृङ्गारं यः श्रृङ्गारफलात्तकः ॥४३॥
ईश्वराख्यपुरीं गौर उररीकृत्य गौरवे ।
जगदाप्लावयामास प्राकृताप्राकृतात्मकम् ॥४४॥
स्वीकृतो राधिकाभावो कान्तिः पूर्वं सुदुष्करः ।
अन्तर्वहिरसांभोधिः श्रीनन्दनन्दनोऽपि सन् ॥४५॥

पादन किया । उनके शिष्य पद्मनाभजी, पद्मनाभजी के नरहरि, नरहरि के माधव,माधव के अक्षोभ, अक्षोभ के जयतीर्थ,उनके ज्ञानसिन्धु,ज्ञानसिंधु के महानिधि,महानिधि के विद्यानिधि, विद्यानिधि के राजेन्द्र, राजेन्द्र के जयधर्म,जयधर्म्म के मुद्गल,मुद्गल के शिष्य विष्णुपुरी हुए । विष्णु-पुरी महोदय ने भक्तिरत्नावली ग्रन्थ का निर्म्माण किया । जयधर्म्मजी के शिष्य ब्रह्मण्य पुरुषोत्तम,पुरुषोत्तमजी के व्यासतीर्थ हुय । व्यासतीर्थ ने विष्णुसंहिता बनायी है । व्यासतीर्थ के लक्ष्मीपति, लक्ष्मीपति के शिष्य भक्ति यज्ञप्रवर्त्तक माधवेन्द्रपुरी जी हैं । उनके ईश्वरपुरी हुए । उन ई-

आद्यव्यूहोऽपि चैतन्यमाविष्यद्यः पुरे परा ।
विचुक्षोभ मनो यस्य दृष्ट्वा गन्धर्वनर्त्तनम् ॥४६॥
दारूकस्थोऽपि भगवान् विचुक्रोश शचीसुतम् ।
गौरः श्रीकृष्णचैतन्यः प्रख्यातः पृथिवीतले ॥४७॥
श्रीचैतन्यस्य शिष्योऽभूत् पंडितः श्रीगदाधरः ।
श्रीराधायाः स्वरूपोऽयं कृष्णभक्ति-प्रवर्त्तकः ॥४८॥
नित्यानन्दोपि शिष्योऽभूत् चैतन्यस्य महाप्रभोः ।
बलदेवांशसंभूतो यः शृंगारवटे स्थितः ॥४९॥
नित्यानन्दसमुद्भूताः शृंगारस्थलवासिनः ।
अद्वैतश्चापि शिष्योऽभूत् चैतन्यस्य महाप्रभोः ॥५०॥
गोपेश्वरांशसंभूतः प्रेमानन्दजलाप्लुतः ।
गदाधरस्य शिष्योऽभूत् कृष्णदासो मुनीश्वरः ॥५१॥
इंदुलेखावतारोऽयं ब्रह्मचारीति यं विदुः ।
तस्य शिष्यो भवच्छ्रीमान्नारदो भट्टरूपधृक् ॥५२॥

श्वरपुरी जी को महाप्रभु श्री गौरांगदेव ने गौरवता के साथ गुरु करके ग्रहण किया तथा उन्होंने प्राकृत-अप्राकृत समस्त जगत् को प्रेमवन्या में डुबा दिया । आप भीतर रससागर नन्दनन्दन होते हुए भी बाहिर श्री-राधिका के भाव और कान्ति को ग्रहण कर गौरांग स्वरूप में अवतीर्ण हुए थे । एक बार आद्यव्यूह श्रीवासुदेव जी पहले द्वारकापुरी में गन्धर्वों के द्वारा अनुकरण प्राप्त नृत्यकौतुक देख क्षुब्धचित्त होगये थे अब वे भी गौरांगदेव में प्रवेश हुए । श्रीगौरांग कृष्णचैतन्यनाम से पृथिवी में विख्यात हैं । उनके शिष्य (पार्षद) राधिका रूप, कृष्णभक्ति प्रवर्त्तक श्रीगदाधरपण्डितगोस्वामी जी हैं । श्रीमन्नित्यानन्दप्रभु श्रीचैतन्यमहाप्रभु जी के पार्षद् हैं जो कि बलदेव जी के अवतार हैं । शृङ्गारवट आप का विलास स्थान (स्थिति) है । अद्यावधि शृङ्गारवट निवासी गोस्वामीगण श्रीनित्यानन्दप्रभु के ही सन्तानपरम्परा है । रूद्रावतार, प्रेमानन्द

श्रीनारायणभट्टोऽसौ प्रख्यातो व्रजमंडले ।
व्रजोद्धारार्थमाज्ञप्तः श्रीकृष्णेन बभूव यः ॥५३॥
व्रजस्याचार्यता यस्य प्रख्याता पृथिवीतले ।
रङ्गदेवी स्थिता यस्मिन्नाविष्टा च महात्मनि ॥५४॥
तेनावेशावतारोऽयं रंगदेव्याश्च कथ्यते ।
दामोदरश्च तत्पुत्रः सुदेवी यस्य विग्रहे ॥५५॥
गोस्वामीति च यं प्राहु वैष्णवाः सर्व एव हि ।
बलभद्री स एवोक्तो बलदेवस्य सेवनात् ॥५६॥
श्रीनारायणभट्टस्य पुत्रो दामोदरश्च यः ।
स एव प्रथमः शिष्यः पितृसिंहासने स्थितः ॥५७॥
नारायणस्य भ्राता यो गोपालो भास्करात्मजः ।
तस्य वंश्याश्च ते सर्वे दक्षिणस्थानमास्थिताः ॥५८॥
शिष्याः नारायणस्यैव तेऽपि धर्म-परायणाः ।

से मत्त, श्रीअद्वैतप्रभु जी श्रीचैतन्यमहाप्रभु के अन्तरङ्ग पार्षद थे । श्री-गदाधरपण्डितगोस्वामी जी के शिष्य इन्दुलेखासखी का अवतार कृष्ण-दास ब्रह्मचारी जी हैं । उनके शिष्य श्रीनारदावतार श्रीनारायणभट्टगो-स्वामी जी ब्रजमण्डल में विख्यात हुए । आप श्रीकृष्ण के द्वारा आदि-ष्ट होकर व्रजोद्धार के लिये प्रकट हुए थे । जिनकी व्रजाचार्यता पृथिवी में विख्यात है । उनमें रंगदेवी का आवेश रहता था ॥२५-२४॥

उनके पुत्र श्री दामोदर जी हुए जो कि सुदेवी जी का अवतार माने जाते हैं । समस्त वैष्णव उनको गोस्वामी करके कहते हैं । वे ही बलभद्रजी की सेवा करने के कारण बलभद्री करके प्रसिद्ध भी हुए हैं । श्रीदामोदर जी ही भट्टजी के प्रथम शिष्य हैं । आप ही पितृ-सिंहासन पर बैठे थे । भट्ट जी के बड़े भ्राता श्रीगोपाल जी के पुत्र-पौत्र दक्षिण में रहते थे । वे सब नारायणभट्ट जी के ही शिष्य प्रशिष्य थे तथा दक्षिण

आगत्य दक्षिणाद्देशात् ब्रजं दृष्ट्वा गताः पुनः ।
गोपालोऽपि हरेर्भक्तो व्रजे वासं चकारह ।।५६।।
श्रीनारायणभट्टस्य पुत्रो दामोदराभिधः।
ब्रजाचार्यस्य पुत्रत्वात् गोस्वामीति प्रथागतः ।।६०।।
दामोदरस्य वंश्या ये ब्रजे गोस्वामिनः स्मृताः ।।६१।।
ब्रजे वासं प्रकुर्वन्ति ह्युच्चग्रामनिवासिनः ।
बलदेवस्य सेवां ये लाड़िलीलालयोरपि ।।६२।।
लाडलेयस्य कृष्णस्य कुर्वन्ति सततं ब्रजे ।
ब्रजादन्यं न मन्यन्ते श्रेष्ठं लोकं परात्परम् ।।६३।।
कृष्णादन्यं न मन्यन्ते सुसेव्यं देवतांतरम् ।
ऊर्द्ध्वपुण्डं च बिभ्राणा मालां तुलसिसंभवाम् ।।६४।।
गोपीचन्दनमुद्रां च राधा-कृष्णेति नाम च ।
गोपीचन्दनसंभूतं बिभ्राणा बाहु-मूलयोः ।।६५।।
द्वादशांस्तिलकांश्चापि धारयन्ति मुनिव्रताः ।
गोपालोपासकाः सर्वे विचरंति महीतले ।।६६।।
तस्मिन् वंशे हि गोस्वामी रघुनाथो भवच्च यः ।
तस्य पुत्रो हि गोस्वामी जानकीप्रसादाभिधः ।।६७।।

से कभी कभी ब्रजभूमी में भी आकर दर्शन-स्पर्शन कर चले जाते थे। गोपाल जी ब्रज में ही वास करने लगे । ब्रजाचार्य्य श्रीनारायणभट्टजी के पुत्र होने के कारण ब्रज में दामोदरजी गोस्वामी इस नाम से विख्यात हुए तथा उनके वंशज भी गोस्वामी रहे । वे सब ऊँचेग्राम में वास करते थे तथा सर्व्वदा बलदेवजी और लाडिलीलालजी की सेवा में नियुक्त रहते थे । ब्रजभूमी से बढ़ कर अन्य कोई धाम नहीं तथा कृष्ण से बढ़ कर अन्य कोई सेव्य स्वरूप नहीं है ऐसा सब मानते थे। वे उर्द्ध्वपुण्ड्र-तिलक,तुलसीमाला का धारण तथा श्रीराधाकृष्णनामङ्कित गोपीचन्दन मुद्रा को बाहुमूल में धारण करते थे। वे सब गोपाल के ही उपासक थे।

नारायणस्य चरितमाचार्यस्य यथामतिः ।
स गायति मुदा धीमान् सर्वलोकस्य पावनम् ।।६८।।
नारायणस्य चरितं सर्वं वक्तुं च कः क्षमः ।
यथामतिः वदेद्धीमान् यथा नारायणस्य हि ।।६९।।
अथान्यच्च प्रवक्षामि यथा ज्ञानं यथा मतिः ।
एकदा माघमासे तु जनाः सर्वे समास्थिताः ।।७०।।
त्रिवेणीस्नातुकामास्ते प्रयागं गंतुमुत्सुकाः ।
तान् विलोक्य जनान् सर्वान् नारायण उवाचह ।।७१।।
न गंतव्यं प्रयागं तु वेणीरत्रैव संस्थिता ।
स्नानं कर्तव्यमत्रैव सखीगिरिसमीपतः ।।७२।।
इत्युक्त्वा दर्शयामास त्रिवेणीं भास्करात्मजः ।
दिव्य-सोपानसंयुक्तां जलकल्लोलशालिनीम् ।।७३।।
सखीगिरिं समारभ्य यावद्ग्रामस्य मन्दिरम् ।
त्रिवेणी विस्तृता तावत्भूम्यां पुण्यजला स्वयम् ।।७४।।
स्नानं चक्रुर्जनाः सर्वे माघव्रतपरायणाः ।
तच्छ्रुत्वा तीर्थराजस्तुप्रयागः समुपेयिवान् ।।७५।।

उनके वंश में ही गोस्वामी श्रीरघुनाथजी हुए । उनका ही पुत्र में जानकी-प्रसाद गोस्वामी, श्रीआचार्य्यनारायणभट्टजी के सकललोकपावन इस च-रित्र को यथा मति आनन्द के साथ कथन करता हूँ । भट्ट जी की समस्त चरित्र को तो कौन वर्णन कर सकता है ।।५५-६९।।

अब अन्य प्रसंग कहता हूँ । एक समय माघमहीना में बहुत मनुष्य त्रिवेणी स्नानार्थ प्रयागराज जा रहे थे । उन सबको भट्ट जी ने कहा-"तुम सब प्रयाग मत जाओ,क्योंकि व्रज में ही प्रयागराज मौजूद है। यहाँ सखीगिरि के पास ही त्रिवेणी है । उसी में ही तुम सब स्नान करो" ऐसा कह कर आपने सबको त्रिवेणी के दर्शन कराये । उस समय दव्यघाट, दिव्यधाराओं से शोभायमान त्रिवेणी जी सखीगिरि से लेकर

उवाच विप्ररूपेण शास्त्रार्थं कर्त्तुमर्हसि ।
कथं निषेधिताः लोकाः प्रयागं गन्तुमुत्सुकाः ॥७६॥
प्रयागस्तीर्थराजो हि सर्वतीर्थोत्तमोत्तमः ।
तदोवाच महाप्राज्ञो नारायण उदारधीः ॥७७॥
प्रयागस्तीर्थराजो हि जम्बुद्वीपे तु सर्वतः ।
प्रयागस्यापि राजाऽयं व्रजो नास्त्यत्र संशयः ॥७८॥
विप्ररूपी प्रयागस्तु माहात्म्यं स्वमुवाच ह ।
नारायणोऽपि संप्राह व्रजमाहात्म्यमुत्तमम् ॥७९॥
व्यतीयुर्दिवसाः सप्त ह्येवं प्रवदतोस्तयोः ।
तीर्थराजस्तदा रूपं निजं कृत्वा समास्थितः ॥८०॥
नारायणस्तदा श्रीमन्नारदः प्रत्यदृश्यत ।
शास्त्रार्थश्च तयोर्जातो लोकविस्मयकारकः ॥८१॥
तेजसा सूर्यसंकाशो नारदो भगवान् मुनिः ।
तमुवाच प्रयागं हि प्रयाग शृणु मद्वचः ॥८२॥

बलदेव जी के मन्दिर पर्य्यन्त सबके प्रत्यक्ष बहने लगी थी उसमें सब ने स्नान किया। उस समय तीर्थराज प्रयाग ब्राह्मण वेश धारण कर वहाँ आकर भट्टजी से बोलने लगे कि तुमने इन सबको क्यों रोका? तुम हम से शास्त्रार्थ करो। प्रयाग ही समस्त तीर्थों का राजा है। भट्टजी ने कहा जम्बुद्वीप में प्रयाग जी समस्त तीर्थों का राजा है परन्तु व्रज तौ प्रयाग का भी राजा है। इसमें कोई सन्देह नहीं है! ब्राह्मण रूपधारी प्रयाग जी अपनी महिमा तथा भट्ट जी व्रज की महिमा कहने लगे। दोनों का अत्यन्त विचार हुआ। इस प्रकार से शास्त्रार्थ होते सात दिवस बीत गये। तब तीर्थराज अपने स्वरूप तथा भट्ट जी निज नारद रूप को प्रकट करने लगे। दोनों में लोक-विस्मयकारी शास्त्रार्थ होने लगा। सूर्य्य तुल्य प्रकाशशील भगवान् नारद जी कहने लगे भो प्रयाग! मेरा बचन सुनो। जिस समय ब्रह्माजी ने तुमको पृथिवी में तीर्थराज बनाया

यदा त्वं ब्रह्मणा पूर्वं तीर्थराजः कृतो भुवि ।
तदा त्वं बलिमादाय विष्णुवाक्यप्रणोदितः ॥८३॥
व्रजं गत्वा स्तुतिं कृत्वा दंडवत् पतितो भुवि ।
व्रजस्तवापि राजाऽयं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमः ॥८४॥
किं न जानासि माहात्म्यं कथं विस्मृतवानसि ।
त्वं तु देवैः कृतस्तीर्थो व्रजः श्रीकृष्णविग्रहः ॥८५॥
एवं पराजितस्तेन नारदेन महात्मना ।
प्रयागः प्रत्युवाचेदं प्रणम्य प्रांजलिः स्थितः ॥८६॥
माहात्म्यं श्रोतुकामोऽहं व्रजस्यात्रागतः प्रभो ।
जाने त्वां नारदं देवं श्रीकृष्णस्य कलामहम् ॥८७॥
निवसामि सदैवात्र सेवार्थं रामकृष्णयोः ।
यदुक्तं च मया देव तत्सर्वं क्षम्यतां प्रभो ॥८८॥
इत्युक्त्वा तीर्थराजस्तु तत्रैवांतरधीयत ।
आचार्य्यं तुष्टुवुः सर्वे धन्यधन्येतिवादिनः ॥८९॥
मूर्तिरूपा त्रिवेणीश्च मन्दिरे तत्र संस्थिता ।
त्रिवेणीः प्रत्युवाचेदं शृणु नारद मेव चः ॥९०॥

उस समय तुमने भगवान विष्णु के वाक्य से पूजा उपहार ग्रहण कर व्रज में जाकर उनको स्तुति के द्वारा दण्डवत् किया था अतः समस्त तीर्थों के राजा तुम और तुम्हारा भी राजा व्रज है। तुम क्या व्रज की महिमा नहीं जानते हो। क्या तुम जानकर भूल गये हो। तुमको तो देवताओं ने ही तीर्थ बनाया है परन्तु व्रज तो साक्षात श्रीकृष्ण का विग्रह है। इस प्रकार प्रयागजी भट्टजी से हार मान कर प्रणाम के साथ हाथ जोड़ते हुए कहने लगे कि-व्रज की महिमा सुनने के लिये ही मैं यहाँ पर आया हूँ। आप श्रीकृष्ण के कलारूप देवर्षि नारद हैं ऐसा मैं जानता हूँ। श्रीरामकृष्ण की सेवा के लिये में यहाँ नित्य निवास करता हूँ। मैंने जो कुछ कहा सो सब क्षमा कीजिये। ऐसा कहकर तीर्थराज अन्त-

सर्वतीर्थागमनं राधाकुंडे यदाभवत् ।
तदा कृष्णाज्ञयाहं च राधाकुंडादिहागता ॥६१॥
सेवार्थं बलदेवस्य सदैवात्र वसाम्यहम् ।
अन्तर्भूम्यां स्थिताहं वै त्वद्भक्त्या प्रकटाभवम् ॥६२॥
न मे प्राकट्यकालोऽयमतश्चांतर्द्धामि भोः ।
स्नातुकामो भवेद्यस्तु सोऽत्र मे धारयेद्रजः ॥६३॥
तस्मै स्नानफलं सर्वं दास्ये नास्त्यत्र संशयः ।
इत्युक्त्वांतर्दधे सापि त्रिवेणी भगवत्प्रिया ॥६४॥
एकदा दीक्षितो यत्र वेदांती तत्र चागतः ।
सर्वशास्त्रार्थतत्वज्ञो ह्यपरः शंकरो यथा ॥६५॥
वादः प्रवर्त्तितस्तस्य दीक्षितेन महात्मना ।
ऐक्यमेवेति वेदांती द्वैतमेवेति दीक्षितः ॥६६॥

र्द्धान हो गये तथा सब कोई आचार्य्यजी की धन्य-धन्य कह कर प्रशंसा करने लगे । उस समय से त्रिवेणीजी मूर्त्ति रूप होकर मन्दिर में रहने लगी तथा भट्टजी को ज्ञात कराने लगी कि-जिस समय श्रीकृष्ण की आज्ञा से राधाकुण्ड में समस्त तीर्थों का आगमन हुआ था उस समय उनकी आज्ञा से राधाकुण्ड से मैं यहाँ चली आई हूँ,बलदेवजी की सेवा के लिये सर्व्वदा मैं यहाँ निवास करती हूँ । तुम्हारी भक्ति से बाहिर प्रकट हो गई हूँ । मेरे प्राकट्य का समय यह नहीं है अतः मैं अन्तर्द्धान हो जाती हूँ । जो कोई स्नान के लिये इच्छुक होकर यहाँ की रजःकणा को धारण करेगा उसको मैं स्नान का समस्त फल प्रदान करूँगी । इसमें कोई सन्देह नहीं है । ऐसा कह कर भगवत्प्रिया त्रिवेणीजी अन्तर्द्धान हो गई ॥७०-६४॥

एक समय समस्त शास्त्र में पण्डित एक वेदान्ती ब्राह्मण आया था मानो द्वितीय शंकर हैं । श्रीभट्टजी से उनका विचार हुआ । वेदान्ती ऐक्य वाद तथा भट्टजी द्वैतवात को प्रतिपादन करने लगे । विचार में

एवं प्रवदमानौ तौ शास्त्रार्थं चक्रतुस्तदा ।
यद्यत्पक्षमुपादाय वेदांती भाषते मतम् ॥६७॥
तत्तच्छास्त्रमतेनैव खंडयामास दीक्षितः ।
(यथोक्तं रामायणे—एकात्मकत्वाज्जहती न संभवे-
त्तथा जहल्लक्षणया विरोधत इत्यादि)
वेदान्ती कथयामास तत्वमस्यादिकं वचः ॥६८॥
त्वं पदं भाषते जीवं तत्पदं ब्रह्मवाचकम् ।
असीत्येतत्पदेनैव ह्यैक्यं वै ब्रह्मजीवयोः ॥६९॥
(यथोक्तं रामायणे—सोऽयं पदार्थाविवभागलक्षणा
युज्येत न त्वं पदयोरदोषत इत्यादि)
भागत्यागेन चात्रैव लक्षणा क्रियते बुधैः ।
तदोवाच महाप्राज्ञो नारायण उदारधीः ॥१००॥
एतच्च दूष्यते विद्वन् भागत्यागादिकं वचः ।
(अल्पज्ञो जीवः सर्वज्ञो विष्णुः एतौ सदा विरुद्धधर्मिणौ न विष्णुरल्पज्ञो भवेत् न चापि जीवः सर्वज्ञो भवेत् कथं भागत्यागः)
अल्पज्ञश्चापि सर्वज्ञः स्वधर्मं न त्यजेत् क्वचित् ॥१०१॥
भागत्यागः कथं तत्र कर्त्तव्यः सर्वदा बुधैः ।
एवं पराजितः सो वै वेदांती तमुवाचह ॥१०२॥

जिन-जिन मतों का आश्रय लेकर वेदान्ती प्रतिपादन करने लगा भट्टजी उन-उन मतों को उन्हीं शास्त्रों के द्वारा खण्डन करने लगे । वेदान्ती तत्वमस्यादि वाक्यों को उठाकर व्याख्या करने लगा । त्वं पद से जीव, तत् पद से ब्रह्म है । "असि" इस पद से दोनों का ऐक्य है । भाग-त्याग पूर्व्वक लक्षणा है । भट्टजी उसका खण्डन करते हुए कहने लगे कि भो विद्वन् ! भागत्याग दोषावह होता है । जीव-अल्पज्ञ अणुरूप है, भगवान् सर्व्वज्ञ तथा परिपूर्ण हैं । दोनों का विरुद्ध धर्म्म सिद्ध होता है । न जीव सर्व्वज्ञ हो सकता है न ईश्वर अल्पज्ञ हो सकते हैं । स्व-

एवं चेत्तर्हि भो ब्रह्मन् महावाक्यं वृथा कथम् ।
तमुवाच तदा श्रीमान् नारायण उदारधीः ॥१०३॥
शृणु विद्वन् प्रवक्ष्यामि महावाक्यं वृथा न हि ।
अन्तरार्थं तु को वेत्ति विनाचार्यप्रसादतः ॥१०४॥
तस्य त्वमिति सम्बन्धो नित्यं हि ब्रह्मजीवयोः ।
देह-देहीतिसम्बन्धस्तथा नित्यं भवेत्तयोः ॥१०५॥
तेन तत्वमसीत्यादि वाक्यं वेदे समास्थितं ।
द्वैतं हि वेदसिद्धान्तो नैवाद्वैतं तु कर्हिचित् ॥१०६॥
तच्छ्रुत्वा प्रणतः प्राह वेदांती मुनिसत्तमम् ।
अनुगृह्णीष्व मां देव शिष्यं कुरू महामुने ॥१०७॥
अनुजग्राह तं श्रीमान् नारायणमहामुनिः ।
दीक्षां ददौ तदा तस्मै तिलकं मालिकां तथा ।
ततः प्रभृति तच्छिष्या वैष्णवा बहवो भवन् ॥१०८॥
कश्चिद्विप्रो महाप्राज्ञो रामानुजमतानुगः ।
महाबुद्धि र्महाविद्वान् बहुशास्त्रार्थतत्ववित् ॥६॥

धर्म परित्याग नहीं होता है । अतः भागत्याग किस प्रकार होगा ? वेदान्ती पराजित होकर कहने लगा यदि ऐसा ही है तो महावाक्य वृथा हो जाता है । भट्ट जी कहने लगे कि नहीं ? महावाक्य वृथा नहीं होता है । इसका अन्तरार्थ और है वह सद्गुरु के बिना ज्ञात नहीं होता है । उसका तुम्हारे सम्बन्ध नित्य है । देह देही सम्बन्ध भी नित्य है । अतः वेदविहित तत्वमसि आदिक वाक्य में द्वैतसिद्धान्त सुस्थिर है । अद्वैत कभी नहीं ठहैर सकता है । अब वेदान्ती मुग्ध होकर शिष्य होने के लिये प्रार्थना करने लगा । भट्टजी ने उसे शिष्य बनाया तब वेदान्ती वैष्णव हो गया तथा तुलसीमाला-तिलक आदिक धारण कर वहाँ ही निवास करने लगा ॥६५-१०८॥

एक समय एक महाविद्वान, बहुशास्त्र तत्व को जानने वाले, श्री-

समीपे ब्रजदेशस्य वासस्तस्य महात्मनः ।
तेन प्रवर्त्तितो वादो भट्टनारायणस्य च ॥११०॥
श्रीभट्टः प्राह श्रीकृष्णं परतत्वं परात्परम् ।
विप्रो नारायणं प्राह रामानुजमतानुगः ॥१११॥
नारायणात्प्रजायन्तेऽवताराः सर्व एव हि ।
तथावतारः श्रीकृष्णः प्रख्यातः पृथिवीतले ॥११२॥
भट्टनारायणः प्राह नैवं वक्तुं त्वमर्हसि ।
नारायणस्य कृष्णस्य भेदो नास्ति कदाचन ॥११३॥
तथापि कृष्णः सर्वेशः श्रीनारायणतः परः ।
व्यासेन लिखितं सर्वं कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ॥११४॥
अतः कृष्णात्परं तत्वं नास्ति किंचित् कदाचन ।
कृष्णेन दर्शिताः सर्वे पार्श्वगा वत्सपालकाः ॥११५॥
नारायणस्य रूपाहि वनेषु परमेष्ठिने ।
नारायणेन कस्मैचित् कुत्र कृष्णाः प्रदर्शिताः ॥११६॥
वक्तव्यं भवता कुत्र प्रमाणं तादृशं भवेत् ।
अतः परतरः साक्षात् कृष्णो नारायणादपि ॥११७॥
एक एव वने दृष्टः श्रीकृष्णः परमेष्ठिना ।
नारायणस्वरूपास्तु बहवस्तत्र दर्शिताः ॥११८॥

रामानुजमतावलम्बी ब्राह्मण आये और आप ब्रज के समीप किसी स्थान में रहते थे । भट्टजी से आप बिशेष वाद विवाद करने लगे तथा कहने लगे कि नारायण ही परम तत्व हैं, श्रीनारायण से ही समस्त अवतार होते हैं । श्रीकृष्ण ही नारायण के अवतार हैं । भट्टजी कहने लगे आप इस प्रकार नहीं कह सकते हैं । देखिये नारायण और श्रीकृष्ण में भेद कभी नहीं है तो भीं श्रीकृष्ण परम तत्व हैं । व्यासजी ने श्रीभागवत में श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान् हैं ऐसा कहा । एक मात्र श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा के लिये वृन्दावन में बहुनारायण रूप से वत्स-बालकों को दिखाया था ।

य एक ईश्वरः सैव वहवो नैव चेश्वराः ।
तथापि भेदं ब्रह्मणः वस्तुभेदो यतो नहि ॥११६॥
रूपांतराहि कृष्णस्य सर्वे नारायणादयः ।
उपासनानुकूल्येन रहस्यं ते प्रदर्शितम् । १२०॥
एवं ब्रजोपि ज्ञातव्यो वैकुंठात् परतः परः ।
लक्ष्म्या अप्यधिका ज्ञेया श्रीराधा च परात्परा ॥१२१॥
(राधया मानलीलायां प्रीत्या कृष्णस्तिरस्कृतः ।
परिहासेऽपि भीतासीत् रुक्मिणी तु स्वयं रमा)
लक्ष्मणादिषु शेषेषु बलदेव परात्परः ।
सखायश्चापि कृष्णस्य पार्षदेभ्यः पराः स्मृताः ।
इत्यादि सर्वशास्त्रेषु निर्णयो नात्र संशयः ॥१२२॥
प्रत्युवाच तदा विप्रो रामानुजमतानुगः ।
नारायणसमुद्भूता ब्रह्मरुद्रादिदेवताः ॥१२३॥
सर्वेषामीश्वरः साक्षात् वैकुंठाधिपतिः प्रभुः ।
नारायणो हि सर्वत्र गीयते मुनिभिस्तथा ॥१२४॥
कथं त्वया महाबुद्धे प्रोक्तः कृष्णः परात्परः ।
वैकुंठादपरं नान्यद्धाम विष्णोः परात्परम् ॥१२५॥

परन्तु नारायणजी का कृष्ण रूप धारण कभी सुनने में नहीं आया है। अतः श्रीकृष्ण ही परतम वस्तु हैं। यद्यपि ईश्वर वस्तु एक है बहु नहीं है, ब्रह्म में वस्तु भेद अनुचित है तो भी नारायणादिक स्वरूप श्रीकृष्ण के रूपान्तर हैं। अपनी उपासना के अनुसार यह रहस्य मैंने कहा है। इस प्रकार ब्रज का बैकुन्ठ से तथा राधिका का लक्ष्मी से परत्व जानना चाहिये। राधिकाजी मानादि के समय श्रीकृष्ण का तिरस्कार करती थीं। परन्तु लक्ष्मीस्वरूपा रुक्मिणीजी श्रीकृष्ण के द्वारा परिहास्यादिकों में भी डरती हुई उद्विग्ना रहती थी। इस प्रकार लक्ष्मणजी, शेषजी से बलदेवजी का तथा पार्षदों से सखाओं का परत्व है। यह सब

यत्र नारायणः साक्षात् लक्ष्म्या सह विराजते ।
वेदैश्च पार्षदैः सार्द्धं प्राकृताद् मंडलाद्बहिः ॥१२६॥
योऽसौ ब्रजस्त्वया प्रोक्तो जम्बुद्वीपे विराजते ।
वैकुंठादधिकः सोऽयं कथं भवितुमर्हति ॥१२७॥
श्रीनारायणभट्टश्च तं प्राह प्रहसन्निव ।
शृणुतेऽहं प्रवक्षामि रहस्यं भूमिदुर्लभम् ॥१२८॥
नारायणस्य भक्तोऽयं नाभिपद्मसमुद्भवः ।
ब्रह्मा जगद्गुरुश्चापि कृष्णभक्तिरतो भवत् ॥१२९॥
त्यक्त्वा नारायणं साक्षात् कथं कृष्णाश्रितोभवत् ।
अतस्त्वयापि ज्ञातव्यः कृष्णः सर्वेश्वरेश्वरः ॥१३०॥
वामांगेऽपि स्थिता भक्ता लक्ष्मीर्नारायणस्य हि ।
लक्ष्मीतो न परः कश्चित् भक्तो नारायणस्य हि ॥१३१॥
सापि कृत्वा तपो नित्यं लक्ष्मीः कृष्णं हि वांछति ॥१३२॥
कृष्णभक्तेषु सर्वेषु गोप्यः सर्वोत्तमोत्तमाः ।
नैव गोप्यस्तु वांछंति कृष्णादन्यं कदाचन ।
अतोऽन्यत् प्रवदे ब्रह्मन् किं प्रमाणं जगत्त्रये ॥१३३॥

सिद्धान्त शास्त्रों में निर्णीत हैं। विप्र ने कहा-ब्रह्म-रुद्रादिक देवता नारायण से होते हैं, नारायण ही सबका ईश्वर हैं वे साक्षात् बैकुण्ठ के अधीश्वर हैं। समस्त मुनिगण नारायण का ही गान करते हैं। बैकुण्ठ से अपर कोई परधाम नहीं है। वहाँ श्रीलक्ष्मी के साथ श्रीनारायण साक्षात् रूप से विराजमान हैं। वह प्राकृत से पर है। ब्रज तो जम्बुद्वीप में है। वैकुण्ठ से अधिक किस प्रकार हो सकता है? श्रीनारायण भट्टजी हँसकर कहने लगे—सुनिये मैं रहस्यमयी बातों को कहूँगा। ब्रह्माजी नारायण के भक्त तथा उनके नाभिकमल से उत्पन्न हुए, परन्तु वे नारायण को परित्याग कर कृष्णपरायण क्यों हुए? लक्ष्मी जी नारायण जी की परमप्रिया और बामांग में रहने वाली हैं। उनसे बढ़कर नारायण का

अथ तेऽहं प्रवक्ष्यामि महिमानं ब्रजस्य च ।
सर्वशास्त्रेषु विख्यातो वैकुंठादधिको ब्रजः ॥१३४॥
(महाराजाधिराजोऽयं वैकुंठे वर्त्तते हरिः ।
ब्रजे स भगवान् साक्षात् गोप्या बद्ध उलूखले ।
शिखाबन्धनमत्रैव गोपीभिश्च कृतो हरेः)
बकनाडीति विख्यातो मुनिर्नीलाचले यदा ।
शापात् काकभुशंभस्य काकरूपो बभूव च ॥१३५॥
शतयोजन-विस्तीर्णं वपुस्तस्य महात्मनः ।
बभ्राम सर्वलोकेषु सर्वतीर्थेषु चापि हि ॥१३६॥
शापाभिभूतः स मुनिः काकरूपं न तत्यजे ।
पुनर्नारदसंदेशात् प्रागतो मथुरां पुरीम् ॥१३७॥

कोई भक्त नहीं है । परन्तु लक्ष्मी जी श्रीकृष्ण की कामना करती हुई अब तक तपस्या कर रही हैं । श्रीकृष्ण के भक्तों में गोपियाँ सर्व्वोपरि हैं गोपियों ने श्रीकृष्ण को छोड़कर अन्य किसी की कामना नहीं की । अब ब्रज की महिमा कहता हूँ । जो समस्त शास्त्र में विख्यात तथा वैकुण्ठ से अधिक है । जिस समय बकनाडी नामक प्रसिद्ध मुनिराज नीलाचल क्षेत्र में काकभूशम्भु के शाप से काकरूप हुए थे तथा शतयोजन बढ़ने लगे उस समय वे समस्त तीर्थों में भ्रमण कर निष्कृति प्राप्त नहीं हुए । जब आप नारदजी के उपदेशानुसार मथुरा में आकर छोटे काक रूप बनकर स्नान करने लगे तथा श्रीकृष्ण का ध्यान किया । तब वे काकरूप को त्याग कर दिव्यरूपधारी हो गये । तब वैकुण्ठ से पार्षदगण उनको लेने के लिये आये । वहाँ महाविद्यादेवी जी कहने लगी की हाय ! श्रीकृष्णभक्त, महामुनि जी किस कारण से ब्रज को छोड़ कर अन्यत्र जायेंगे । जिसके ऊपर श्रीकृष्ण की पूर्ण कृपा है वह ब्रज में रहते हैं । ये तो कृष्णभक्त हैं । वैकुंठ नहीं चाहते हैं । उस समय श्रीकृष्ण प्रगट होकर महाविद्या जी से कहने लगे कि--नहीं-नहीं मैं मुनिराज को

तदैव लघुरूपोऽभूत् स काकः प्राकृतो यथा ।
स्नानं कृत्वा स्थितस्तत्र कृष्णध्यानपरायणः ॥१३८॥
त्यक्त्वा देहं तदा सद्यो दिव्यरूपो बभूवह ।
वैकुंटादागतास्तं वै नेतुं श्रीविष्णुपार्षदाः ॥१३९॥
महाविद्या तदा प्राह हाहा कृत्वा पुनः पुनः ।
ब्रजं त्यक्त्वा कथं चायं मुनिः कृष्णपरायणः ॥१४०॥
विनापराधं कृष्णस्य वैकुण्ठं हि गमिष्यति ।
यस्मै भक्ताय कृष्णस्य कृपा पूर्णा न जायते ॥१४१॥
वैकुंठे वसतिस्तस्य किंचिद् दृष्ट्यवलोकनात् ।
ब्रजस्था बहु मन्यन्ते वैकुण्ठं नैव कर्हिचित् ॥१४२॥
अयं तु मुनिवर्यो हि कृष्णभक्तिरतः सदा ।
नैव वांछति वैकुण्ठं ब्रज एव वसेत् सदा ॥१४३॥
तदैव कृष्णचन्द्रोऽपि प्रादुर्भूतः परात्परः ।
उवाच च महाविद्यां पार्षदानां च शृण्वताम् ॥१४४॥
प्रस्थापयामि नैवाहं वैकुंठे मुनिसत्तमम् ।
महिमा ब्रजभूमेश्च त्वद् वक्त्राच्छ्रावितो मया ॥१४५॥
इत्युक्त्वा मुनिमादाय कृष्णस्त्वंतर्दधे प्रभुः ।
पार्षदास्तु गताः सर्वे वैकुण्ठं ते यथागतम् ॥१४६॥

वैकुंठ नहीं जाने देऊँगा । तुम्हारे मुख से ब्रज की महिमा सुनने के लिये ही यह बात हुई है । ऐसा कहकर मुनिराज को लेकर वे अन्तर्द्धान हो गये । अतः ब्रज की महिमा वैकुंठ से भी अधिक है । बलदेवजी की महिमा का रहस्य इस प्रकार धरणी शेष संवाद में कहा गया है । भागवत् में भी कालिन्दी से बलदेव जी इस प्रकार प्रार्थित हुए थे कि-हे राम ! हे महाभुज ! मैं तुम्हारा विक्रम नहीं जानती हूँ । जिसके अंश में जगत् विधृत है । यहाँ एकांश का तात्पर्य्य शेष है । शेष-अनन्त ये सब अंश हैं । सबके अंशी बलदेवजी हैं । बलदेवरहस्य में कहा है-

अतो ब्रजस्य महिमा वैकुंठादधिको मतः ।
बलदेवस्य महिमा रहस्ये कथितः स्फुटः ॥१४७॥
(श्रुतिरूपा-जयति ते-इन्दिरा लक्ष्मीः ब्रजे सेवते
वकुंठे तु लक्ष्मीः स्वामिनी अस्ति, अतो ब्रजस्याधिकम्)
धरणीशेषसंवादे सर्वत्र विदितो जनैः ।
श्रीमद्भागवते चापि कालिन्द्याः प्रार्थितो बलः ॥१४८॥
राम राम महाबाहो न जाने तव विक्रमम् ।
यस्यैकांशेन विधृता जगती जगतः पते ॥१४९॥
(एकांशेनेति शेषेण व्याख्यानं तत्र जायते)
अंशाः शेषा ह्यनंताश्च तेषामंशी बलः स्मृतः ।
बलदेवरहस्ये-सच्चिदानन्दरूपोऽयं बलदेवः स्मृतो बुधैः ॥१५०॥
सदंशे वासुदेवोऽयं चिदंशे स्वयमेव हि ।
आनन्दांशे च राधा स्यात् ह्लादिनी शक्तिरुत्तमा ॥१५१॥
लक्ष्मीतोऽप्यधिका राधा गीयते तत्र तत्र हि ।
सर्वलक्ष्मीमयी सर्वकांतिः संमोहिनी परा ॥१५२॥
इत्यादि वचनं तन्त्रे जागरूकं न संशयः ।
ब्रह्मवैवर्तके चापि व्यासेन लिखितं स्फुटम् ॥१५३॥
कृष्णांगादभवद्विष्णु राधांगादभवद्रमा ।
गंगातोऽप्यधिका प्रोक्ता कालिंदी ब्रजमण्डले ॥१५४॥
श्रीवाराहपुराणेऽपि श्रीवाराहवचो यथा ।
गंगाशतगुणा प्रोक्ता माथुरे मम मंडले ॥

यह बलदेव सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। सदंश में वासुदेव, चिदंश में स्वयं, आनन्दांश में श्रील्हादिनी शक्ति श्रीराधिका हैं। वहाँ लक्ष्मी से राधा की आधिक्यता गाई गई है। "समस्त लक्ष्मीमयी तथा समस्त कान्ति-रूपा, परा, सन्मोहिनी श्रीराधिका जी हैं। ब्रह्मवैवर्त्त में व्यास जी ने स्पष्ट कहा है कि-श्रीकृष्णजी के अङ्ग से विष्णु तथा श्रीराधिका के

कालिंदी संस्थिता देवी नात्र कार्या विचारणा ।
इत्यादि वचनं सर्वं स्मरणीयं सदा बुधैः ॥१५५॥
ब्रजं तु दर्शयिष्यामि यदि ते संशयो हृदि ।
किंतु वै चर्मदृष्टीनां नैव दृश्यो यथार्थतः ॥१५६॥
द्रष्टव्यो दिव्यदृष्ट्यैव त्वयाऽयं ब्रजमंडलः ।
रजो धारय नेत्रयोस्त्वं दर्शनार्थं ब्रजस्य च ॥१५७॥
इत्युक्त्वा तं रजो दत्वा दर्शयामास नारदः ।
सर्वतः कांचनीं भूमिं दिव्यरत्नस्थलमयम् ॥१५८॥
कालिंदीं दिव्यसोपानां रत्नधातुमयान् गिरीन् ।
वृक्षान् स्वर्णमयान् सर्वान् रत्नपुष्पफलान्वितान् ॥१५९॥
मुक्ताजालमयाः शाखाः दर्शयामास नारदः ।
दिव्यसोपानसंपन्नान् कुंडांस्तत्र ददर्शह ॥१६०॥
विस्मयं गतवान् विप्रो रामानुजमतानुगः ।
वैकुंठोपासको नित्यं कृष्णध्यानरतो भवत् ॥१६१॥

अङ्ग से लक्ष्मी प्रकट है। ब्रजमण्डल में कालिन्दी श्रीयमुना जी है जो गङ्गा से भी अधिक महिमा वाली है। वाराहपुराण में वाराह भगवान् ने कहा– यह गंगा से शतगुण अधिक महिमा वाली यमुना मथुरा-मण्डल में बहती है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।" हे ब्राह्मण ! आप इन सब बातों का स्मरण कीजिये। यदि आपका सन्देह होता है तो मैं आपको ब्रज का स्वरूप दिखाऊँगा। परन्तु चर्म्मचक्षु से यह अ-दृश्य है। आप नेत्र में ब्रज रज लगाइये। आपकी दिव्यदृष्टि हो जा-यगी। ऐसा कहकर श्रीभट्टजी उनको ब्रज रज देने लगे। उससे उनकी दिव्यदृष्टि हो गई तब वे ब्रज का स्वरूप जानने लगे। वहाँ की भूमी सुवर्णमयी, दिव्यरत्नमय स्थल, दिव्यरत्नों से जड़ित दिव्य सिढ़ियों से युक्त यमुना, रत्न-धातुमय गिरिराज पर्व्वत, रत्नमय पुष्प-फलों से युक्त त-था मुक्ता साखास्वरूप सुवर्णमय वृक्ष, दिव्य सोपानों से युक्त कुंड समूह

कश्चिद्विप्रो ब्रवीत्तत्र श्रीरामः परतः परः ।
सर्वमुक्तिप्रदो देवस्तारको भगवान् हरिः ॥१६२॥
पार्वतीं प्रति कैलासे शिवस्य वचनं यथा ।
रामरामेति रामेति रमे रामे मनो रमे ।
सहस्र-नामतातुल्यं रामनाम वरानने ।
तारको भगवान् रामः प्रसिद्धो वेदतन्त्रयोः ॥१६४॥
सर्वनामाधिराजं हि यस्य नाम स्मृतं बुधैः ।
पुनर्जगाद तं विप्रं श्रीमद्भास्करनन्दनः ॥१६५॥
परिपूर्णतमः कृष्णः पूर्णो रामो न संशयः ।
रामाद्या अवताराश्च श्रीकृष्णे लीनतांगताः ॥१६६॥
प्रेमभक्तिप्रदः कृष्णः रामो मुक्तिप्रदः स्मृतः ।
वाराहः प्राह मथुरामाहात्म्ये धरणीं प्रति ॥१६७॥
तारकाज्जायते मुक्तिः प्रेमभक्तिस्तु पारकात् ।
पारकः कथितः कृष्णस्तारको राम एव हि ॥१६८॥
रामायणे यथा प्रोक्तं श्लोकं वै दर्शयाम्यहम् ।
आलोड्याखिलवेदराशिमखिलं यत्तारकं ब्रह्म तत् ॥१६९॥

को देखकर परम विस्मय को प्राप्त हो श्रीकृष्ण का ध्यान करने लगे ॥१०९-१६१॥

वहाँ किसी विप्र ने कहा-श्रीराम हीं परात्पर हैं तथा मुक्तिदाता तारक स्वरूप हैं । कैलासपर्व्वत में पार्व्वती जी के लिये महादेव का वचन है-सहस्र विष्णुनाम के तुल्य एक राम नाम है । समस्त नामों के अधीश्वर रामनाम है । श्रीभट्टजी कहने लगे-सुनिये । श्रीकृष्ण परिपूर्णतम तथा श्रीराम पूर्ण हैं । रामादिक अवतार श्रीकृष्ण में मौजूद हैं । श्रीकृष्ण प्रेमभक्ति के दाता तथा श्रीराम मुक्तिदाता हैं । मथुरामहिमा में धरणीदेवी के लिये बराहभगवान ने कहा है-तारक से मुक्ति तथा प्रेमभक्ति पारक से होती है । श्रीकृष्ण पारक स्वरूप तथा श्रीराम तारक स्व-

रामो विष्णु रहस्यमूर्त्तिरिति यो विज्ञानभूतेश्वरः ।
उद्धृत्याखिल-सारसंभृतमिदं संक्षेपतः प्रस्फुटं ॥
श्रीरामस्य निगूढतत्त्वमखिलं प्राह प्रियायै भवः ।
रामस्य तारकत्वं हि ज्ञायतेऽनेन निश्चितम् ॥१७०॥
पारकत्वेऽपि कृष्णस्य प्रमाणं गौतमीयके ।
पारकः पावनो हंसो हंसारूढो जगत्पतिः ॥१७१॥
भक्तिः श्रेष्ठा यथा मुक्तेः कृष्णो रामात्तथैव हि ।
मुक्तिं दासीं ददौ भक्त्यै पाद्मे चेयं कथास्थिता ॥
त्रिसहस्र नाम तुल्यं कृष्ण नाम न संशयः ॥१७३॥
शतावृत्तिसहस्रैस्तु नामभिर्यत् भवेत्फलम् ।
राधाकृष्णेऽति प्रजपन् तत्प्राप्नोति सुधीर्नरः ॥१७४॥
इत्यादि बहुशः प्राह श्रीमद्भास्करनन्दनः ।
एवं नारायणो भट्टो विजयं प्राप्तवान् प्रभुः ॥१७५॥
प्रसन्नश्च सर्वे विप्रो रामानुजमतानुगः ।
प्रणम्य नारदं प्राह धन्योऽसि मुनिसत्तम ॥१७६॥

रूप कहे हुए हैं । रामायण में कहे हुए श्लोकों को देखिए-समस्त वेद-शास्त्र मन्थन से जो तारक ब्रह्म प्रकट हुआ है । वे ही विष्णु की रहस्यमूर्त्ति श्रीराम हैं । इसका निगूढ़ तत्व-राम सबके ईश्वर हैं । महादेवजी ने पार्व्वती जी के लिये ऐसा कहा है । इससे रामका तारक स्वरूपत्व स्पष्ट जाना जाता है । श्रीकृष्ण का पारक स्वरूपत्व गौतमीयतन्त्र में कहा गया है । यथा-आप पारक,पावन, हंस,हंसारूढ़, जगत्पति हैं" जैसी भक्ति,मुक्ति से श्रेष्ठ है ठीक उसी प्रकार श्रीकृष्ण राम से श्रेष्ठ हैं । पद्मपुराण का वचन यह है-तीन सहस्र नाम के तुल्य कृष्ण नाम है इसमें कोई सन्देह नहीं है । सहस्रनाम हजार बार पाठ करने से जो फल होता है श्रीराधाकृष्ण एक बार कहने से वह फल है । इस प्रकार अनेक विचार के पश्चात् श्रीभट्टजी विजय को प्राप्त हुए । विप्र ने प्रसन्नता के

सर्वेषां संप्रदायानां नारद: प्रथमो गुरुः ।
त्वमेवार्हसि देवर्षे मतं सर्वं प्रकाशितम् ॥१७७॥
इदानीं विप्ररूपेण श्रीकृष्णोपासको भवान् ।
वस्तु-गत्या न भेदोऽस्ति कृष्णे नारायणे तथा ॥१७८॥
इत्युक्त्वा संगतो विप्रो प्रणम्य मुनिसत्तमम् ।
ब्रजे भक्तिं प्रकुर्वाणः कृष्ण कृष्णेऽति कीर्त्तयन् ॥१७९॥
ब्रजे तु वैष्णवा: सर्वे श्रीभट्टेन कृता जनाः ।
नास्तिका अपि ये जीवास्तेऽपि कृष्णपरायणाः ॥१८०॥
स्मार्ताश्च निर्जिताः सर्वे जन्माष्टम्यादि निर्णये ।
लीला बहुविधास्त्वेवं नारदस्य महात्मनः ॥१८१॥
मानुषं वपुरास्थाय चरतो ब्रजमंडले ।
को नर: सकलं तस्य चरितं वक्तुमर्हति ।
किंचित् किंचित् मया प्रोक्तं यथा ज्ञानं यथा मतिः ॥१८२॥
अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि प्रसंगं ब्रह्मचारिणः ।
यच्छ्रुतं यत्र कुत्रापि न जाने साध्वसाधु वा ॥
श्रीकुण्डे चैकदास्थाय ध्यानस्तिमितलोचनः ।
कृष्णदासब्रह्मचारी श्रीमन्मदनमोहनम् ॥१८३॥

साथ कहा-तुम धन्य हो, तुम मुनिराज नारद हो। समस्त सम्प्रदाय के आदिगुरु नारदजी हैं। समस्त मत को तुम प्रकाश कर सकते हो। अब आप विप्ररूप से श्रीकृष्ण के उपासक हैं। वस्तुतः श्रीनारायण तथा श्रीराम से श्रीकृष्ण का कोई भेद नहीं है। इस प्रकार भट्ट ने व्रज के अन्य-अन्य मतवाले, नास्तिक, स्मार्त्त सबको कृष्ण परायण किया। श्रीनारदजी ने मनुष्य रूप में व्रज में आकर जो लीलाएँ की सो अनन्त हैं। कौन सबका वर्णन कर सकता है। परन्तु यथा बुद्धि मैं यत् किञ्चित् कहता हूँ ॥१६२-१८२॥

अब अन्य प्रसंग का वर्णन करता हूँ। श्रीकृष्णदासब्रह्मचारीजी

सेवमानः सदा भक्त्या परं धाम जगामह ।
भट्टो नारायणस्तत्र सर्वैश्च वैष्णवैस्तदा ॥१८४॥
उत्सवं कारयामास प्रीत्या च ब्रह्मचारिणः ।
सर्वे ते वैष्णवाः प्रोचुर्भट्टं प्रांजलयस्तदा ॥१८५॥
राधामोहनसेवां त्वं कुरु ब्रह्मन् महामते ।
त्वदन्यो न महाप्राज्ञ शिष्यो वै ब्रह्मचारिणः ॥१८६॥
त्वदधीनोहि सर्वोऽयं मन्दिरो मोहनस्य च ।
नारायणस्तदा प्राह वाढमुक्तं न संशयः ॥१८७॥
ऋणं वापि धनं वापि सर्वं मे ब्रह्मचारिणः ।
तथाप्यहं प्रसन्नोस्मि मोहनं सेवयंतु ते ॥१८८॥
गोस्वाम्यनुमता ये वै वैष्णवाः संप्रदायिनः ।
अहं तु बलदेवस्य सेवायां व्यग्रमानसः ॥१८९॥
लाड़िलेयस्य कृष्णस्य लाड़लीलालयोरपि ।
इत्युक्त्वा दीक्षितः श्रीमान् आरात्तिं कृतवान् प्रभोः ॥१९०॥
प्रणम्य मोहनं स्वेष्टं गृहीत्वाज्ञां स्वयं प्रभोः ।
वैष्णवान् कथयामास सेवनं कर्त्तुमर्हथ ॥१९१॥
ततः प्रभृति देवेशं सेवंते वैष्णवाश्च ते ।
जान्हवाशिक्षिता ये वै जीवगोस्वामीसंमताः ॥१९२॥

राधाकुण्ड में मदनमोहनजी की सेवा कर रहे थे। इतने में आप ध्यान परायण होकर नित्यलीला में पधार गये। भट्टजी ने वैष्णवों के साथ वहाँ आय कर प्रीति के साथ उनका महोत्सव किया। उस समय समस्त वैष्णवों ने प्रार्थना की कि तुमसे महाचतुर कौन है। तुम ही मदनमोहनजी की सेवा कर सकते हो। समस्त मन्दिर तुम्हारे अधीनता में हैं। श्रीनारायणभट्टजी कहने लगे सत्य है ब्रह्मचारीजी हमारे धन,जन, सर्व्वस्व हैं। मैं प्रसन्न हूँ। यहाँ गोस्वामी-अनुमत सम्प्रदायी वैष्णव सेवा करें। मैं बलदेवजी, लाडिलेयजी, तथा लाडिलीलालजी की सेवा

बलदेवांशसंभूतो नित्यानन्दः प्रभुर्महान् ।
श्रीशृङ्गारवटे तस्य स्थितिरासीन्महात्मनः ॥१९३॥
बहूनां वैष्णवानां च स गुरुः सर्वतो मतः ।
नित्यानन्दस्य भार्यासीत् जान्हवा नाम विश्रुता ॥१९४॥
(नित्यानन्दो यदा रामो रेवती जान्हवा तदा)
तस्याः शिष्याश्च ये ते वै जान्हवाशिक्षिताः स्मृताः ।
तेषां हि वंशजास्ते वै सेवन्ते मोहनं तु ये ॥१९५॥
अन्येषां वैष्णवानां च संमतः स बभूवह ।
अर्हंति वैष्णवाः सर्वे कृष्णसेवां न संशयः ॥१९६॥
युक्तं कृतं तु भट्टेन ममत्वं तस्य नैव हि ।
ब्रह्मचारिप्रसंगेऽस्मिन् संदेहस्तु ममाऽपि हि ।
यत्र कुत्र श्रुतं चैतत् लिखितं न विचारितम् ॥१९७॥
अथ नारायणः श्रीमान् संकेतस्थलमास्थितः ।
रासोत्सवं सदा पश्यत् गोपीभावेन तद्गतः ॥
श्रीराधाकृपया साक्षात् नित्यलीलां ददर्शह ॥१९८॥
यत्र यत्र स चकार माधवः श्रीगणेन सह रासमण्डलम् ।
तत्र तत्र स च भास्करात्मजः श्रीवपुर्धृक् जगाम मण्डले ॥१९९॥

में व्यग्र रहता हूँ । ऐसा कहकर आपने मदनमोहनजी की आरती की । तब से जान्हवादेवी के द्वारा अनुशासित शिष्य-प्रशिष्य जीवगोस्वामीजी की सम्मति से सेवा करने लगे । श्रीबलदेव स्वरूप ही श्रीनित्यानन्द प्रभु हैं । वे बहु वैष्णवों के गुरु हैं । उनकी भार्य्या देवी जान्हवाजी हैं । जब राम नित्यानन्दजी है तो रेवतीजी जान्हवाठाकुराणी हैं । उनके शिष्यों के वंशज मदनमोहनजी के सेवक हैं ॥१९३-१९७॥

अनन्तर भट्टजी गोपीभाव में भावित होकर संकेत में आये तथा राधिका जी की कृपा से वहाँ नित्यलीला का दर्शन करने लगे । जहाँ-

इति श्रीनारदावतारनारायणभट्टाचार्य्यकुलोद्भवगोस्वामीश्रीरघुनाथात्मज गोस्वामीजानकीप्रसादविरचिते श्रीनारायणभट्टाचार्य-चरितामृते चतुर्थ आस्वादः ॥४॥



एकदा दीक्षितः श्रीमान् गोपीवेशं समास्थितः ।
गतो गगनमार्गेण लेपनाख्यं वनं मुनिः ॥१॥
तत्र गोपीकदम्बं स ददर्श मुनि-सत्तमः ।
श्रीकृष्णार्थं प्रकुर्वन्तं घर्षितं चन्दनं बहु ॥२॥
काचिद्गोपी तदोवाच मुनिं दृष्ट्वा तथाविधम् ।
नवेयं गोपिका गोप्यः सेवार्थं समुपागता ॥३॥
वयं कुर्मो यथा सेवामेषा कर्तुं तथार्हति ।
कयाचिच्चन्दनं दत्तं कयाचित् केशरं तथा ॥४॥
घर्षयेति तथा चोक्तं कृष्णलेपार्थमेव हि ।
गोपीवेषो मुनिस्तत्र जघर्ष बहुचन्दनम् ॥५॥
गोपिकाः पात्रमादाय जगृहुश्चन्दनं च तत् ।
न कोऽपि दृश्यते तत्र क्षणमात्रेण नारदः ॥६॥

जहाँ श्रीकृष्ण ने रासलीला की थी वहाँ-वहाँ गोपीभाव धारण कर प्रविष्ट हुए तथा रसानुभव करने लगे ॥१९८-१९९॥

एक समय भट्टजी गोपीवेश धारण कर आकाशमार्ग में लेपन नामक वन में पहुँचे और वहाँ आपने श्रीकृष्ण के लिये चन्दन घिसती हुई अनेक गोपियों को देखा । भट्टजी को देखकर किसी गोपी ने कहा-नवीन यह गोपी सेवा के लिये आई है । किसी ने चन्दन, किसी ने केशर, किसी ने अन्य सुगन्धि वस्तु को घिसने के लिये दिया । गोपीवेशधारी भट्टजी उन वस्तुओं का घर्षण करने लगे । वे सब गोपियाँ उनके पात्रों से घर्षण वस्तु लेकर अन्तर्द्धान हो गईं । वहाँ केवल भट्टजी अकेले रह गये । आप उस वन के लिये प्रणाम कर ऊँचे ग्राम को पधारे ॥१-६॥

वनं प्रणम्य शिरसा ह्यु च्चग्रामं जगामह ।
एकदा वैष्णवैः सार्द्धं गतो गोवर्द्धनं गिरिम् ।।७।।
गोवर्द्धनगिरेः पूजां कुर्वन्ति व्रजवासिनः ।
नारदो दीक्षितः श्रीमान् वैष्णवान् प्रत्युवाचह ।।८।।
एषः गोवर्द्धनः साक्षात् कृष्ण एव न संशयः ।
तथैव मानसीगंगा गंगैवास्ति पयोमयी ।।९।।
वैष्णवाश्च तदा प्रोचुः कथं दृश्यो भवेच्च नः ।
नारायणस्तदोवाच रजो धार्यं हि चक्षुषि ।।१०।।
तथैव च कृतं सर्वै वैष्णवैर्भक्तितत्परैः ।
क्षणमात्रेण ते सर्वे ददृशुः कृष्णविग्रहम् ।।११।।
गोवर्द्धनं प्रकुर्वन्तं भोजनं निजहस्ततः ।
दिव्यरूपांश्च ददृशुः सर्वान् वै ब्रजवासिनः ।।१२।।
मानसीं ददृशु गङ्गां पयः कल्लोलशालिनीम् ।
रत्नसोपानसम्पन्नां स्वर्णवृक्षतटीं शुभाम् ।।१३।।
सद्योऽन्तर्दधिरे सर्वे गिरिगोवर्द्धनः स्थितः ।
कृत्वा प्रदक्षिणां सर्वे वैष्णवा नारदानुगाः ।।१४।।

एक समय अनेक वैष्णवों के साथ आप गोवर्द्धन पर्वत पर पधारे। वहाँ ब्रजवासी गोवर्द्धन की पूजा कर रहे थे। श्रीमान् जी ने वैष्णवों से कहा—यह गोवर्द्धन साक्षात् श्रीकृष्ण रूप है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इस प्रकार मानसीगंगा साक्षात गंगा रूप है। वैष्णवों ने कहा उनका साक्षात् अनुभव कैसे हो सकता है? भट्टजी ने कहा-नेत्रों में ब्रजरज को धारण करो। सब ने ब्रजरज को धारण किया तथा साक्षात् रूप से उनका स्वरूप देखा, जिस प्रकार द्वापर में गोवर्द्धनपूजा के समय हुआ था। कल-कल शब्द करने वाली, रत्नमय सिढ़ियों से तथा सुवर्णमय वृक्षों से युक्त तट वाली, मानसीगंगा का स्वरूप देखकर सब यथा विधि परिक्रमा-दण्डवतादि करने लगे। अब सब कोई चन्द्रसरो-

गिरिगोवर्द्धनात् पूर्वं गताश्चन्द्रसरोवरम् ।
तत्र कोलाहलं श्रुत्वा क्षणमात्रं समास्थिताः ।।१५।।
स्वर्लोकादागताः सर्वे देवा इन्द्रपुरोगमाः ।
कुर्वन्ति परितो देवाः शब्दं जयजयेति ते ।।१६।।
ततस्तत्रायुर्गावः गोवृषाश्च समागताः ।
गोपा आयान्ति गोमध्ये वेणुवादनतत्पराः ।।१७।।
तन्मध्ये दृश्यते श्रीमान् गोपवेषधरो हरिः ।
पीतवासा घनश्यामो वनमालाविभूषितः ।।१८।।
गोधूलिधूषितवपुर्बलदेवेन संयुतः ।
तं दृष्ट्वा देवताः सर्वास्तुष्टुवुर्विविधैः स्तवैः ।।१९।।
जलं पिबन्ति गावश्च तस्मिश्चन्द्रसरोवरे ।
श्रीनारायणभट्टश्च दर्शयामास वैष्णवान् ।।२०।।
प्रणेमुर्वैष्णवाः सर्वे नारदश्च मुनीश्वरः ।
प्रणनाम हरिं तावत् सर्वेऽन्तर्द्धिरे ततः ।।२१।।
एकदा दीक्षितः श्रीमान् संकेतस्थलमास्थितः ।
श्रीराधारमणो यत्र नित्यं स्थाने विराजते ।।२२।।
कार्त्तिक्यां पूर्णिमायां च तत्र भास्करनन्दनः ।
रासलीलानुकरणं कारयामास भक्तितः ।।२३।।

वर में आये, वहाँ विविध कोलाहल सुनने लगे। सब ने देखा-इन्द्र के साथ देवता आकर जय जय ध्वनि कर रहे हैं। श्रीकृष्ण गोचारण वेश धारण करते हुए गौ चराते चराते बलदेवजी के साथ वहाँ पर आये। गौएँ उस सरोवर में आकर जल पान करने लगीं। ऐसा सब ने देखा तथा आनन्दित होकर नारायणभट्ट को प्रणाम किया ॥७-२१॥

एक समय कार्त्तिक पूर्णिमा के दिवस दीक्षितजी संकेत में रासलीला का अनुकरण करा रहे थे। उस समय श्रीराधारमण स्वरूप प्रकट होकर कहने लगे कि--मैं प्रसन्न हूँ, तुम मेरे भक्त श्रेष्ठ हो। तुम मेरी

तत्सुखं दर्शयामास लोकेभ्योऽपि समं ततः ।
श्रीराधारमणस्तत्र नारायणमुवाचह ॥२४॥
प्रसन्नोऽहं च देवर्षे त्वं मे भक्तोत्तमः प्रियः ।
मम लीलाकथां पूर्वां त्वं हि गायस्व दीक्षित ॥२५॥
तदा नारायणो भट्टः पंचाध्यायीं जगौ मुनिः ।
व्याख्यां च कृतवांस्तस्याः प्रेमपूर्णः सुविस्तराम् ॥२६॥
श्रुत्वा श्रीरमणः कृष्णः स्वयमेव प्लुतो भवत् ।
आज्ञापयामास मुदा संतुष्टोऽस्मि तवानघ ॥२७॥
श्रीमद्भागवतं सर्वं व्याख्यां हि मुनिसत्तम ।
त्वत्समो नापरो मेऽस्ति रहस्यज्ञो भुवः स्थले ॥२८॥
त्वन्मुखादपरं किंचिच्चरित्रं मे प्रकाशय ।
मम चातिप्रियं भूयाच्चरित्रं नात्र संशयः ॥२९॥
तदा नारायणो भट्टष्टीकां भागवतस्य च ।
रसिकाह्लादिनीं नाम चक्रे कृष्णप्रणोदितः ॥३०॥
ततः प्रेमांकुरं नाम नाटकं कृतवान् मुनिः ।
अन्ये च बहवो ग्रन्थाः नारायणविनिर्मिताः ॥३१॥
यत्र कृष्णस्य जन्मादिलीलाः सर्वाः प्रकीर्त्तिताः ।
दानलीला च कृष्णस्य गोपीनां च परस्परम् ॥३२॥

लीला का गान करो। भट्टजी पञ्चाध्यायी गाने लगे तथा विस्तरव्याख्या भी आपने की। पुनः प्रभु ने आज्ञा की कि-मैं प्रसन्न हूँ। तुम समस्त भागवत की टीका लिखो, तुम से अधिक कौन लिख सकता है तुम अपने मुख से कुछ रहस्यों का प्रकाश करो। इस प्रकार राधारमणजी की आज्ञा से प्रेरित होकर, आपने श्री भागवत की रसिकाल्हादिनी नाम की टीका बनाई ॥२२-३०॥

अनन्तर आपने प्रेमांकुर नामक नाटक तथा अन्य बहुत ग्रन्थों की रचना की। जिनमें जन्मादिलीला, दानलीला, मगरोकनी लीला, पार-

हठेन रोधनं चापि गालीदानं परस्परम् ।
गोपीनां च पराजयः गालीमिषेण तत्र हि ।
अंतः प्रीतिर्बहिः क्रोधो भांडविस्फोटनं तथा ॥३३॥
दध्नो विलुंठनं चापि गोपीनां च पराजयः ।
(गोपिकाविजयः क्वापि श्रीकृष्णस्य पराजयः)
गालीमिषेण कृष्णस्य संकेतकथनं तथा ॥३४॥
गोपालैर्बहुभिः सार्द्धमिदानीं गर्वितोऽसि रे ।
एकाकी मिलितश्चेत्त्वं तदा धूर्त्त शिरोमणे ।
सखीगिरिसमीपे ते करिष्ये मुखमण्डनम् ।
बहुमुष्टिप्रहारेण सरलस्त्वं भविष्यसि ॥३६॥
आगमिष्याम्यहं नूनं तत्र त्वं किं करिष्यसि ।
इत्येवं कृष्णसंवादो गोपीभिस्तत्र कीर्त्तितः ॥३७॥
कुण्डे कुण्डे च या लीला लिखिता तत्र विस्तरात् ।
वनलीला तथा प्रोक्ता सांझिका रचनोत्सवे ॥३८॥
पुष्पावचयनं चापि सखीभिः सह राधया ।
श्रीकृष्णः कृतवान् क्वापि रसिकाणां शिरोमणिः ।
निकुंजरचना चापि सखीभिश्च कृता यथा ॥३९॥
विहारश्च निकुंजेषु श्रीराधारमणस्य यः ।
निकुंजभेदा बहवस्तत्र तत्राधिकारिता ॥४०॥

स्परिक गाली देने की लीला, मटकी फोड़नी, दही लूटनी, गोपियों का पराजय-विजय, गालि छल से संकेत करनी लीला "अरे! बहुत गोपसखाओं से तुम गर्व्वित हो। यदि अकेले मिलोगे तब सखीगिरि के पास तुम्हारी चुटिया उतराय देंगी और घूँसे के प्रहार से तुम सरल हो जाओगे। हम इसी प्रकार यहाँ नित्य आवेंगी तुम क्या करोगे" यह संकेत करने की लीला है, प्रत्येक कुण्डों में गोपियों के साथ श्रीकृष्ण ने जो-जो लीलाऐं कीं, वनविहारलीला, साँझीलीला, दोनों की पुष्प-

गोपीनां तु क्रमेणैव लिखिता तत्र तत्र हि ।
निकुंजद्वारमास्थाय श्रीकृष्णगुणकीर्त्तनम् ॥४१॥
शुकेन वै शारिकया श्रीराधागुणकीर्त्तनम् ।
इत्यादि बहुधा प्रोक्ता लीला प्रेमाख्यनाटके ॥४२॥
एकदा वैष्णवैः सार्द्धं नन्दग्रामं गतो विभुः ।
गिरिं प्रदक्षिणीकृत्य नत्वा श्रीनन्दनन्दनम् ॥४३॥
स्तुत्वा स्तोत्रेण तत्रैव नन्दद्वारि समास्थितः ।
अकस्मात्तत्र शुश्राव पर्वतेऽलौकिकीं गिरम् ॥४४॥
दिवारूढं घनस्याम प्रातराशार्थमेहि भोः ।
प्रत्युत्तरमभूत्तद्वदागच्छामीति तद्वने ॥४५॥
श्रुत्वा तद्वैष्णवाः सर्वे दिशः सर्वा व्यलोकयन् ।
श्रीमन्नारायणाचार्यः प्रेमपूर्णो भवत्ततः ॥४६॥
उवाच वैष्णवान् सर्वान् ज्ञातं किंचिदिहाद्भुतम् ।
श्रीकृष्णो भगवानत्र नित्यं लीलां करोति हि ॥४७॥
प्रातराशाय गोविन्दो ह्यत्राहूतो यशोदया ।
एकाकी चैकदा भट्टो बरसानौ गतो मुनिः ॥४८॥

चयनलीला, सखियों के द्वारा निकुंजरचना, निकुंजभेद, निकुञ्ज की अधिकारी देवी का वर्णन आदिक अनेक लीलाऐं वर्णित हैं॥३१-४२॥

एक समय वैष्णवगण के साथ आप नंदग्राम में आये। पर्वत की परिक्रमा कर नन्दनन्दन के दर्शन तथा स्तुति आदिक करने लगे। सब ने श्रीनन्द महाराज के द्वारदेश में खड़े होकर अकस्मात् कोई लोकवाणी सुनी। किसी ने कहा कि हे घनश्याम! प्रातःकाल भोजन के लिये आ जाना, किसी ने प्रत्युत्तर दिया कि हाँ मैं आय जाऊँगा। ऐसा सुनकर भट्टजी आश्चर्य्यान्वित हो गये, आप सबको कहने लगे कि यह आश्चर्य्य है,यहाँ नित्य हरि की लीला होती है॥४३-४८॥

तत्रैका गुर्जरी प्राह गृहमागच्छ मे प्रभो ।
दधि तेऽहं प्रदास्यामि भोगार्थं रामकृष्णयोः ॥४९॥
नवपात्रे धृतं मिष्टं यत्नात्संसाधितं मया ।
बलदेवस्य भोगार्थं लाडलेयस्य चैव हि ॥५०॥
श्रुत्वा भट्टोऽपि भावेन प्रोक्तं तद्वचनं ततः ।
तस्या मार्गेण गतवान् तद्गृहं निर्मलं महत् ॥५१॥
अङ्गणे कन्यका काचित् शरच्चन्द्रशतानना ।
प्रदक्षिणां प्रकुर्बति तुलस्याश्च पुनः पुनः ॥५२॥
प्रोवाच दीक्षितं सा च अत्रागच्छ द्विजोत्तम ।
दधि तुभ्यं प्रदास्यामि नित्यं नित्यं न संशयः ॥५३॥
लाडलेयस्य वै मालां प्रसादं मे प्रयच्छ भोः ।
प्रातरानीय दास्यामीत्युक्त्वा भट्टः स्थितस्ततः ॥५४॥
तद्गोपिका-समानीतं गृहीत्वा दधि-भाजनम् ।
गन्तुं कृतमतिर्द्वारि क्षणमात्रं स्थितोऽभवत् ॥५५॥
तावद्ददर्श तां कन्यां श्रीराधां कीर्त्तिनन्दनीम् ।
कीर्त्तिं तां गोपिकां तद्वत्तत्सखीर्ललितादिकाः ॥५६॥
दृष्ट्वा प्रणम्य भट्टोऽपि स्तुतिं कर्त्तुं प्रचक्रमे ।
सद्योऽन्तर्दधिरे सर्वास्तद्गृहं च तथैव हि ॥५७॥

एक समय एक गूजरी ने भट्टजी से कहा कि-तुम मेरे घर पर आना, मैंने बहुत अच्छा दही रखा है, तुम लेकर लाडिलीजी को तथा राम-कृष्ण को भोग लगाओ। भट्टजी उसके इशारे से उसके घर पर पहुँचे। आपने देखा कि एक षोडशवर्षीया बालिका तुलसी की परिक्रमा दे रही थी। वह भट्टजी को कहने लगी कि आओ दही देऊँगी। तुम दही लेकर भोग लगाना और मुझ को एक लाडिलेय की प्रसादीमाला देना। मैं सबेरे आऊँगी। भट्टजी उससे दही लेकर चलने लगे। आपने पीछे दृष्टि देकर देखा कि वह बालिका वहाँ नहीं है। वहाँ तो साक्षात्

गृहीत्वा दधि भट्टोऽपि मन्दिरं समुपेयिवान् ।
राजभोगस्य बेलायामर्पयामास तद्दधि ॥५८।
तत्समं नापरं किंचित् दधि लोकत्रयेऽपि हि ।
एकदा वैष्णवाः सर्वे श्रीराधा-दर्शनोत्सुकाः ॥५९॥
भट्टं चानुगता द्रष्टुं नवम्यां होलिकोत्सवम् ।
नन्दग्रामात्समागत्य स्थिता गोपालबालकाः ॥६०॥
वादित्राणि विचित्राणि वादयन्तः समन्ततः ।
गायन्तश्चापि हृष्यन्तो वदन्तश्च यथामनः ॥६१॥
रेचकानि विचित्राणि हस्ते नीत्वा पुनः पुनः ।
धूलिकापोटिकाक्षेपं सहंतश्च पदे पदे ॥६२॥
कुंकुमाक्तमुखाः सर्वे वृक्षशाखाधरास्तथा ।
होलिका-हर्षसंपन्ना वृद्धाश्च तरुणाश्च ते ॥६३॥
एकस्वभावसंपन्ना एकवेषाः समुत्सुकाः ।
बरसानौ समागत्य कुर्वन्तो होलिकोत्सवम् ॥६७॥
बरसानोः स्त्रियः सर्वाः नानावेषधरा वराः ।
आदाय लष्ठिकां हस्ते हर्षात्तत्र समाययुः ॥६८॥

किशोरीजी हैं तथा संग में ललितादि सखियाँ हैं । कुछ काल के पश्चात् वे भी सब अन्तर्द्धान हो गईं । भट्टजी बहुत प्रसन्न तथा आश्चर्य्यान्वित होकर दही लेकर चल दिये ॥४९-५८॥

एक समय होलिका उत्सव था । वैष्णवगण श्रीजी के दर्शन के लिये उत्कण्ठित होकर भट्ट जी के साथ बरसाने में उपस्थित हुए । उस समय नन्दग्राम से गोपबालक सब आकर विचित्र वाद्यों को बजाते हुए गा रहे थे । हाथ में अबीर, गुलाल, पिचकारी, धूलि की पोटलियाँ तथा वृक्षों की शाखाऐं थीं । कुंकुम से सबके मुख लालवर्ण हो गये थे । सब एक वेश तथा एक स्वभाव के थे । उधर बरसाने की स्त्रियाँ नाना वेश धारण कर हाथों में लट्ठ लेकर एक एक आईं । किसी के हाथ में कुंकुम-

काश्चिद्रङ्गं समादाय स्थिता गोपी समुत्सुका ।
काचित् कुंकमपात्रं च गृहीत्वा धावती पथि ॥६९॥
गायंत्यश्च प्रहृष्यंत्यो मार्गे मार्गे पुरस्त्रियः ।
केचिच्छीघ्रं प्रधावन्ति मन्दिरं दर्शनोत्सुकाः ॥७०॥
कृत्वा च दर्शनं केचित् सोपानेभ्यः समंततः ।
अवतीर्य जनाः सर्वे स्त्री-बाल-स्थवरादयः ॥७१॥
पश्यन्तो होलिकोत्साहं विचरंत इतस्ततः ।
गोपाला हर्षिताः सर्वे नन्दग्रामनिवासिनः ॥
गोपाश्च संहताः सर्वा बरसानुपुरस्थयाः ।
परस्परं प्रकुर्वन्ति होलिका-मंगलोत्सवम् ॥७२॥
श्रीमन्नारायणाचार्यो मन्दिरे समुपस्थितः ।
लाड़लीलालदेवस्य श्रृङ्गारं स चकारह ।
पूजयित्वा विधानेन धूपदीपादिभिस्तदा ॥
समर्प्य भोगान् विविधानारात्तिं कृतवांश्च सः ।
श्रीनारायणदासश्च परिचर्यापरायणः ॥७३॥
तत्रानन्दं प्रपश्यंतो वैष्णवाः समुपस्थिताः ।
स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च प्रणयन्तो हरिं प्रभुम् ॥७४॥
विकीर्यमाणा रंगैश्च कुंकुमैश्च समंततः ।
समाजस्तत्र संजातः परस्परमुदावहः ॥७५॥

पात्र, किसी के पास रंग और किसी के पास अन्य-अन्य क्रीडाद्रव्य समूह थे कोई भागती हुई आ रही थी कोई वा मन्दमन्थर गति से आ रही थी । कोई तो ऊपर से सिढ़ियों में होकर नीचे उतरती थीं । दोनों समाज मिलकर होरी खेलने लगे । श्रीनारायणदास स्वामीजी ने ऊपर मन्दिर में भोग-राग देकर लाडिलीलाल का श्रृङ्गार किया, देश-विदेशों से भक्त-वैष्णव सब आने लगे तथा सबों ने होली महोत्सव देखकर श्रीहरि को प्रणाम किया । भट्टजी सब से कहने लगे कि-भो ! वैष्णव-

नन्दग्राम-वृहत्सानु-पुरमन्दिरवासिनाम् ।
दृष्ट्वानन्दं च तत्रत्यं श्रीमद्भास्करनन्दनः ॥७६॥
भक्त्या प्रणम्य देवेशं मन्दिरद्वारमागतः ।
वरसानुपुरे जातं ददर्श होलिकोत्सवम् ॥७७॥
वैष्णवान् कथयामास पश्यध्वं कौतुकं महत् ।
समाजे होलिकोत्साहे स्थिता यत्र पुरस्त्रियः ॥७८॥
नन्दग्रामस्य गोपा ये कुर्वन्ति होलिकोत्सवम् ।
वैष्णवास्तत्र ददृशुराचार्यानुग्रहात्ततः ॥७९॥
ससखौ रामकृष्णौ च गोपमध्ये समास्थितौ ।
सुवर्णरेचिका-हस्तौ कुंकुमाक्तौ मनोहरौ ॥८०॥
गोपीमध्ये च ददृशुः श्रीराधां सुमनोहराम् ।
रङ्गकुंकुमहस्तां च सखीभिः परिवारिताम् ॥८१॥
तद्दृष्ट्वा वैष्णवाः सर्वे प्रणम्य च पुनः पुनः ।
नारायणं प्रणेमुस्ते येन संदर्शितो हरिः ॥८२॥
समाप्य लीलां ते सर्वे स्वं स्वं धाम ययुस्ततः ।
नारायणोऽपि तद्ध्यायन्नुच्चग्रामं गतो मुनिः ॥८३॥
एकदा वैष्णवाः सर्वे देशान्तरनिवासिनः ।
वनं हि गह्वरं द्रष्टुं विज्ञप्तिं चक्रिरे प्रभोः ॥८४॥

गण ! देखिये । बरसाने की पुरस्त्रियों के साथ नन्दग्राम के गोपालों का जो एकत्रित होकर यह होली खेली जाती है । सब ने आचार्य्यजी की कृपा से देखा कि-सखाओं के साथ साक्षात् श्रीकृष्ण नंदग्राम से आय कर सुवर्णपिचकारी आदिक ले श्रीगोपियों के बीच होरी खेल रहे हैं । आप के सर्व्वाङ्ग कुंकुम से लिप्त हो रहे हैं । आप अत्यन्त मनोहरता को प्राप्त हो रहे हैं । वैष्णव सब आश्चर्य्य तथा चकित होकर श्रीनारायण-भट्टजी को प्रणाम करने लगे तथा होली के उपरान्त अपने-अपने स्थान पर चले गये । भट्टजी ऊँचेग्राम के लिये चल दिये ॥७९-८३॥

श्रीनारायणभट्टस्य समवेताः समुत्सुकाः ।
आचार्यो दर्शनार्थाय नित्यं गच्छति गह्वरम् ॥८५॥
तमनु प्राव्रजन् सर्वे गह्वरं हि वनोत्तमम् ।
दृष्ट्वा हर्षं गताः सर्वे बहुवृक्षाकुलं वनम् ॥८६॥
सर्वतः पर्वताक्रांतं मध्ये चैकं सरोवरम् ।
एकस्तत्रागतोऽकस्मात् सिंहः क्रूरो भयङ्करः ॥८७॥
समीपमगमत्तत्र यत्र ते वैष्णवाः स्थिताः ।
तं दृष्ट्वा तत्रसुः सर्वे धावमाना इतस्ततः ॥८८॥
नारायणस्तदा प्राह भीताः किं वैष्णवा वने ।
निवसन्ति महाभागा नानारूपास्तपोधनाः ॥८९॥
इत्युक्त्वा सिंहमप्याह राधे राधे वदस्व भोः ।
हस्तं तच्छिरसि न्यस्य ह्यभीतो मुनिसत्तमः ॥९०॥
सिंहोऽपि नत्वा चरणौ गतस्तस्माद्वनान्तरम् ।
क्षणमात्रेण तत्रैव सिंहः पंचत्वमावह ॥९१॥
दिव्यरूपो विमानस्थो गतो मुक्तिपदमयम् ।
वैष्णवाश्चरितं दृष्ट्वा ह्याश्चर्यं लेभिरे परम् ॥९२॥

अथ देश-विदेशों से आगत वैष्णवों की गह्वरवन देखने की इच्छा हुई । दीक्षितजी नित्य गहवरवन देखने को जाते थे । वे सबको वहाँ ले गये । सब ने देखा कि-चारों ओर पर्व्वत और लता वृक्षों से आच्छन्न है । बीच में एक सरोवर है । वहाँ अकस्मात् एक भयंकर सिंह आया । सब डरते हुए भागने लगे । भट्टजी ने कहा-इस वन में महाभाग्यशील तपस्वीगण नाना रूप धारण कर वास करते हैं । आपने सिंह को भी कहा-तुम भी राधे राधे कहो । आपने उसके मस्तक में हाथ रखा । सिंह चरणों में नमता हुआ अन्य वन के लिये जाने लगा, परन्तु वह क्षण-काल में मर गया तथा दिव्यरूप धारण कर अन्तर्द्धान होगया । वैष्णव सब आश्चर्य्य को प्राप्त हुए ॥८४-९२॥

एकदा दीक्षितः श्रीमानुच्चग्रामं समास्थितः ।
देहकुण्डसमीपस्थ अटोराख्ये गिरौ वरे ॥९३॥
गोदोहनं प्रकुर्वंतं गोपपुत्रं ददर्शह ।
काचिद्गोपी च तरुणी वत्सं जग्राह यत्नतः ॥९४॥
गोदोहनकरो गोपस्तामुवाच हसन्निह ।
नागमिष्याम्यहं प्रातः गोदोहनकृते तव ॥९५॥
प्रतिज्ञातं न मे दत्तं त्वया भामिनि किंचन ।
सा च गोपी तदा प्राह दास्ये सर्वं न संशयः ॥९६॥
सायं मे गृहमागच्छ दास्ये त्वां नवनीतकम् ।
मिश्रिकामिश्रितं दिव्यं प्रतिज्ञातं हि यच्च तत् ॥९७॥
तच्छ्रुत्वा प्रहसन् गोपः किशोरो गतवांस्ततः ।
सा च गोपी गता तद्दुग्धमादाय वै गृहम् ॥९८॥
श्रीनारायणभट्टश्च ध्यानस्तिमितलोचनः ।
ललितां गोपिकां तां च गोपं कृष्णं ददर्शह ॥९९॥
एकदा गोपिकारूपं कृत्वा नारायणो मुनिः ।
कालिन्द्या निकटे स्थानं वृन्दारण्ये जगामह ॥१००॥
यत्रैव भगवान् कृष्णो रासलीलां करोति हि ।
पुंसा नैव गतिर्यत्र पुंभावेन कथंचनः ॥१०१॥

एक समय देहकुण्ड के पास अटोरागिरि पर गोदोहन करता हुआ एक गोपबालक को आपने देखा । आपने और भी किसी गोपी को बछड़ा पकड़ती हुई खड़ी देखा । गोपबालक ने हँसकर कहा-मैं कल नहीं आऊँगा । तुमने जो कहा था सो नहीं दिया । गोपी ने कहा-नहीं नहीं, तुम सन्ध्या को हमारे घर पर अवश्य आय जाना । मैं मिश्री-मक्खन अवश्य देऊँगी । बालक तो अन्तर्द्धान हो गया तथा गोपी दूध लेकर वहाँ से चल पड़ी । श्रीभट्टजी ध्यान करके जान गये कि वह गोपी ललिता तथा वह बालक श्रीकृष्ण हैं ॥९३-९९॥

गोपीरूपो मुनिस्तत्र वीणाहस्तो व्यदृश्यत ।
तं दृष्ट्वा गोपिकाः सर्वा एह्येहीत्यब्रुवंस्तदा ॥१०२॥
उपवीणय देवेशं श्रीराधारमणं प्रभुम् ।
कृतांजलिपुटो भट्टो निषसाद तदाज्ञया ।
तदोपवीणयामास नारदः स्त्रीवपुर्धरः ॥१०३॥
गोप्यो गानं तदा चक्रुः प्रसन्नो भगवानभूत् ।
वरं ददौ दीक्षिताय पश्य लीलां सदा मम ॥१०४॥
पुनरंतर्दधे सर्वः सकृष्णो रासमण्डलः ।
नारदोऽपि मुनिस्तत्र प्रणम्य जगदीश्वरम् ॥१०५॥
पुनर्जगाम वेगेन ह्युच्चग्रामं निजं ततः ।
एवं बहुविधां लीलां पश्यन् कृष्णस्य नित्यशः ॥१०६॥
दिव्यरूपो मुनिश्रेष्ठो मानुषं रूपमास्थितः ।
लीला नित्या व्रजो नित्यो दिव्यरूपो न संशयः ॥१०७॥
दिव्यदृष्ट्यैव दृश्येत न दृश्यश्चर्मचक्षुषा ।
किंतु प्राकृतदृष्टीनां प्राकृतो दृश्यते नृणाम् ॥१०८॥
कल्पवृक्ष इवैवायं नानाश्चर्यप्रदो नृणाम् ।
आचार्यकृपया सर्वैर्यथार्थो दृश्यते व्रजः ॥१०९॥

एक समय गोपीरूप धारण कर आप वृन्दावन गये । जहाँ रास-लीला होती है तथा जहाँ पर पुरुषों का गमन नहीं है । भट्टजी वीणा हाथ में लेकर बजाते हुए श्रीराधारमणजी की स्तुति करने लगे । उधर गोपियों का गान हो रहा था । श्रीराधारमणजी प्रसन्न होकर उनको वर देने लगे कि-तुम सदा सर्वदा मेरी लीलाओं को देखोगे । ऐसा कह कर श्रीहरि रासमण्डली के साथ अन्तर्द्धान हो गये । भट्टजी ऊँचेग्राम के लिये चल दिये । इस प्रकार दिव्यरूप से वे नित्य लीलाओं का दर्शन करते थे । क्यों कि लीला नित्य हैं, व्रज भी नित्य है, परन्तु दिव्य-दृष्टि से उनका अनुभव होता है । चर्म्मचक्षुः से नहीं है । प्राकृत दृष्टि

आचार्यो हि सदा सेव्यो ब्रजदर्शनकांक्षिभिः ।
उपायो नापरो ह्यत्र समीचीनो न संशयः ॥११०॥
अथैको ब्राह्मणो भक्तस्तत्रासीद्वैष्णवो महान् ।
भाषापद्यैः सविविधै र्नित्यं स्तौति स्म केशवम् ॥१११॥
सूरदासाह्वयो धीमान् उच्चग्रामे स आगतः ।
ददर्श समुपासीनं ब्रजाचार्यं मुनीश्वरम् ॥११२॥
सूरस्तं श्रावयामास कृष्णलीलामयं पदम् ।
श्रीनारायणभट्टं च तुष्टाव प्रीतमानसः ॥११३॥
तमुवाच महाप्राज्ञः श्रीभट्टो ज्ञानिनां वरः ।
कृष्णभक्त प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूहि ददामि ते ॥११४॥
सूरदासस्तदा प्राह कृतांजलिपुटः शनैः ।
नारदो भगवान् साक्षात् ज्ञातोऽसि मुनिसत्तम ॥११५॥
जगतामुपकाराय मानुषं वपुरास्थितः ।
उपदेशकरो नित्यं कृष्ण एव न संशयः ॥११६॥
आचार्यो भगवान् साक्षादिति मे निश्चिता मतिः ।
विज्ञप्तिं शृणु मे स्वामिन् कृपां कुरु ममोपरि ॥११७॥

से प्राकृतरूप दीख पड़ते हैं। वे सब कल्पवृक्ष की भाँति नाना आश्चर्य्य को देने वाले हैं। आचार्य्यों की कृपा से यथार्थ स्वरूप का अनुभव होता है। ब्रजदर्शन के लिये इच्छुक व्यक्ति नित्य आचार्य्यों की सेवा करें। इससे अन्य कोई उपाय नहीं है ॥१००-११०॥

अनन्तर महान् वैष्णव, महाभक्त, सूरदास नामक विप्र ऊँचेग्राम में आकर भट्टजी को कृष्णलीलाओं से युक्त पदों को सुनाने लगे तथा भट्टजी को स्तुति करने लगे। भट्टजी ने प्रसन्न होकर कुछ वर माँगने को कहा॥ सूरदासजी कहने लगे आप साक्षात् नारदजी हैं, जगत् के उपकारार्थ आये हुए हैं। आचार्य्य भगवत् स्वरूप होते हैं। मेरी एक विज्ञप्ति है कि आप कहिये इस समय श्रीकृष्णचन्द्र कहाँ है ? मैं अन्ध

अधुना कृष्णचन्द्रो हि वर्त्तते कुत्र तद्वद ।
कथं मे दर्शनं भूयाज्जन्मांधस्य जगद्गुरो ॥११८॥
श्रीनारायणभट्टश्च ब्रजाचार्य उवाच तम् ।
अधुनैव गतः कृष्णः सखीगिरि-समीपतः ॥११९॥
बरसानुसमीपे हि चारयन् गाः सहानुगैः ।
त्वं गच्छ वरसानुं हि यदि ते दर्शने मनः ॥१२०॥
कियद्दूरेऽधुना मार्गे गोपालस्त्वां मिलिष्यति ।
तच्छ्रुत्वा सूरदासोऽपि नत्वा भट्टं मुनीश्वरम् ॥१२१॥
मार्गं तदैव जग्राह वरसानोर्महामनाः ।
कियद्दूरगतं सूर उच्चग्रामाच्छनैः शनैः ॥१२२॥
शब्दं शुश्राव हेहीति गोपवर्यस्य धावतः ।
तच्छ्रुत्वा सूरदासोऽपि मार्गे स्थित्वा ब्रवीद्वचः ॥१२३॥
हे हि शब्दः कृतः केन मार्गं मे भण्यतामितः ।
गोपालस्तमुवाचेदं सन्मुखे मार्ग एव हि ॥१२४॥
पुनः प्रोवाच तं सूरो हस्तं दत्वा नयस्व माम् ।
अन्धोऽहं नैव पश्यामि मार्गं गर्त्तादिदूषितम् ॥१२५॥
गोपालोऽपि तदागत्य हस्तं दत्वा प्रयत्नतः ।
मार्गं नीत्वा च तं सूरं गच्छस्वेति तदाब्रवीत् ॥१२६॥
तदा तद्धस्तसंस्पर्शात् सूरो जातः सुलोचनः ।
ततो ददर्श गोपालं स्यामसुन्दरविग्रहम् ॥१२७॥

हूँ। उनका दर्शन कैसे होगा ? भट्टजी कहने लगे कि अभी श्रीकृष्ण सखीगिरि से गोचारण करते हुए सखाओं के साथ बरसाने में गये हैं। तुम कुछ दूर आगे जाओ, वहाँ तुमको मिल जावेंगे। अब विप्र उस मार्ग में जाने लगे। कुछ दूर जाकर आपने बालकों का हि हि शब्द सुना। एक गोपाल को मार्ग पूछने पर गोपाल ने कहा कि आगे रास्ता है। सूर ने कहा मेरे हाथ पकड़ कर ले चलिये। गोपाल हाथ पकड़ कर उस मार्ग

हस्ताद्धस्तं समाकृष्य दुद्राव श्रीहरिस्ततः ।
गावो गच्छन्ति मे चेति प्रोक्त्वा सूरं गिरिं प्रति ॥१२८॥
सूरस्तमनुदुद्राव नैव प्राप कथंचन ।
न च गावस्तु दृश्यन्ते न गोपालोऽपि तत्र हि ॥१२९॥
बरसानौ गत: सूरो गिरिमारूरुहे तदा ।
नैव गावोऽपि दृश्यन्ते चतुर्दिक्षु समंततः ॥१३०॥
पप्रच्छ मनुजान् सूरो गावः कुत्र गता इति ।
गोपालोऽपि गत: कुत्र श्यामसुन्दरविग्रहः ॥१३१॥
जनाः प्रोचुस्तदा तं वै नैव कालो गवामयम् ।
कथं भ्रान्तोऽसि सूर त्वं तव किं दृश्यतेऽधुना ॥१३२॥
सूरदासोऽपि तं ज्ञात्वा गोपालं श्रीहरिं परम् ।
उवाच प्रणयात्तं वै किंचित् कुपितमानसः ॥१३३॥
हस्तमाकृष्य यातोऽसि ज्ञात्वा मां निर्बलं प्रभो ।
हृदयाद्यास्यसे देव पौरुषं गणये तदा ॥१३४॥
त्वां दृष्ट्वा नैव पश्यामि प्राकृतं मानुषं प्रभो ।
अतोऽन्धं कुरु मां देव यथा पूर्वं नमोऽस्तु ते ॥१३५॥

में पहुँचाय कर कहने लगा अब जाओ । उस बालक के हस्त स्पर्श से उनके नेत्र खुल गये तथा सूर ने गोपाल को श्यामसुन्दर रूप से देखा । बालक उनके हाथों से अपने हाथ छुड़ा कर "मेरी गाय चली गई मैं जाता हूँ" ऐसा कह कर वह बालक अदृश हो गया । सूरजी पीछे-पीछे भागे परन्तु फिर बालक का दर्शन नहीं मिला । वे बरसाने में जाकर पूछने लगे । सब ने कहा अब गौचारण का समय नहीं है । तुम इस प्रकार भ्रान्त क्यों हो रहे हो ? सूर उस बालक को साक्षात् श्रीहरि जान कर कुछ प्रणय क्रोध के साथ कहने लगे कि दुर्बल मेरे हाथों से हाथ छुड़ाकर चले गये हो, यदि हृदय से चले जाओगे तो तुम्हारे पौरुष को जानूँगा । तुमको मैं प्राकृत मनुष्य नहीं जानता हूँ । तुम तो स्वयं श्री-

इत्युक्त्वा सूरदासोऽपि यथा पूर्वोऽभवद्द्विजः ।
जगे श्रीकृष्णचन्द्रस्य नानालीलामयं पदम् ॥१३६॥
नागाजिर्वैष्णवश्चैको विरक्तानां स चाग्रणीः ।
अन्ये महानुभावाश्च हरिदासादयो परे ॥१३७॥
आगच्छन्ति स्म बहवो वेणीदर्शनकांक्षिणः ।
समाजः सुमहानासीदेकदा देवमन्दिरे ॥१३८॥
तन्मध्ये शुशुभे प्राज्ञः श्रीमद्भास्करनन्दनः ।
बलदेवाग्रत: सर्वे मिलिता ज्ञानिनां वराः ॥१३९॥
चक्रुः सर्वे मिलित्वाथ श्रीकृष्णगुणकीर्त्तनम् ।
दामोदरोऽथ गोस्वामी पुष्पमालादिकं बहु ।
बलदेवप्रसादं स सर्वेभ्य: प्रददौ मुदा ॥१४०॥
मन्दिरे संस्थिताः सर्वे तन्मध्ये दीक्षित: स्थितः ।
गोपालोपि महाप्राज्ञो भट्टो भास्करसंभवः ॥१४१॥
बहवो वैष्णवास्तत्र मन्दिरे समुपागता: ।
प्रपच्छ ब्रजमाहात्म्यं कश्चिद्वै वैष्णवोत्तमः ॥१४२॥
कश्चित्पप्रच्छ कृष्णस्य रहस्यं भूमिदुर्लभम् ।
भक्तिमार्गांश्च पप्रच्छ कश्चित् पुष्टिरसादिकान् ॥१४३॥
मर्यादामार्गमेवापि कृष्णभक्तेः पृथक् पृथक् ।
सर्वेषामुत्तरं श्रीमान् ददौ भास्करनन्दनः ॥१४४॥

हरि हो । तुमको मेरा नमस्कार है । अब सूरदासजी पहले स्वरूप में आ गये तथा नाना लीलामय पद्यों को गाने लगे ॥१११-१३६ ।
एक समय महाबिरक्त नागाजी, श्रीहरिदास आदिक वैष्णवगण वेणीदर्शन करने के लिये आये । बलदेवजी के मन्दिर में बड़ा भारी समाज हुआ । सब कोई श्रीकृष्ण के गुण कीर्त्तन करने लगे । दामोदरगोस्वामी ने सबको पुष्पमाला और बलदेवजी का प्रसाद दिया । वहाँ भट्टजी के बड़े भैया गोपालजी मौजूद थे । किसी ने ब्रजमहिमा, किसी ने श्रीकृष्ण की

ग्रन्थे भक्तिविवेकाख्ये मार्गाः सर्वे प्रकाशिताः ।
तच्छ्रुत्वा हर्षमापुस्ते तत्रस्था वैष्णवा जनाः ॥१४५॥
कश्चिद्वैष्णवः प्राह श्रीहरिदासं मुदान्वितः ।
गाने त्वं कुशलः सम्यक् पदं श्रावय केशवम् ॥१४६॥
बलदेवं तथा सम्यक् त्वत्समो नापरो भुवि ।
तच्छ्रुत्वा हरिदासोऽपि सर्वेषां शृण्वतां सताम् ॥१४७॥
पदं संश्रावयामास बलदेवं सहानुजम् ।
श्रुत्वा ते वैष्णवाः सर्वे साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ॥१४८॥
तं कश्चिद्वैष्णवः प्राह गन्धर्वोऽयं न मानुषः ।
गानमेतादृशं सम्यग् नास्माभिस्तु श्रुतं क्वचित् ॥१४९॥
ततश्च हरिदासोऽपि प्राह भास्करनन्दनम् ।
श्रीमुखादमृतं किंचिच्छ्रोतुमिच्छामहे मुने ॥१४७॥
श्रावितं बलदेवाय यथा ज्ञानं मया पदम् ।
भवानुच्छ्रावयतु श्रीमन् बलदेवाय किंचन ॥१४८॥
तच्छ्रुत्वा दीक्षितः श्रीमान् प्रणम्य श्रीहलायुधम् ।
सप्तस्वरमयीं वीणां जग्राह प्रहसन् विभुः ॥१४९॥
श्रीमद्भागवतं तत्र स तया वीणया जगौ ।
तच्छ्रुत्वा वैष्णवाः सर्वे शिरश्चालनपूर्वकम् ॥१५०॥
धन्य धन्येति ते सर्वे प्रशशंसुर्मुनीश्वरम् ।
आश्चर्यं लेभिरे सर्वे स्थिता ये ब्राह्मणोत्तमाः ॥१५१॥

रहस्य बातें, किसी ने भक्तिमार्ग, किसी ने मर्यादा तथा पुष्टिमार्ग को पूछा। भट्टजी ने सबको यथा-योग्य उत्तर दिये। जो कि भक्तिविवेक ग्रंथ में लिखित हैं। किसी वैष्णव ने श्रीहरिदासजी की प्रार्थना की-आप गानविद्या में पण्डित हैं आपके सदृश अधिक और कोई नहीं है। श्रीबलदेवजी को गान सुनाइये। तब श्रीहरिदासजी पद सुनाने लगे, वैष्णवों ने साधु-साधु प्रशंसा की। किसी ने कहा कि आप साक्षात् गन्धर्व हैं म-

कथयन्ति स्म ते सर्वे मनुष्योऽयं न कर्हिचित् ।
ज्ञाने गाने तथा भक्त्या न चास्य सदृशो भुवि ॥१५२॥
दृष्टो वापि श्रुतो वापि मनुष्योऽस्माभिरेव हि ।
अयं तु नारदः श्रीमान् स्वयमास्ते न संशयः ॥१५३॥
अन्यथाऽलौकिकी विद्या कथमस्य भवेदिह ।
हरिदासादयः सर्वे नागाजि-प्रमुखास्तथा ॥१५४॥
परं हर्षं गताः सर्वे श्रुत्वा तृप्तिं न लेभिरे ।
समाप्याथ समाजं ते श्लाघां चक्रुर्मुदान्विताः ॥१५५॥
अहोति हर्षिताः सर्वे वयमत्र समागताः ।
किं किं न प्राप्नुयाज्जीवो हरिदाससमागमे ॥१५६॥
आनन्दं नापरं विद्मः श्रीमद्भागवताद्वयम् ।
तत्रापि भवता श्रीमच्छ्रावितं महदद्भुतम् ॥१५७॥
कथितुं नैव शक्ताः स्म आनन्दोऽभूद्यथा हि नः ।
इत्युक्त्वा गन्तुकामांस्तान् श्रीमद्भास्करनन्दनः ॥१५८॥
विनयात् स्थापयामास बलदेवस्य मन्दिरे ।
कृत्वारार्त्तिं च देवस्य राजभोगादनन्तरम् ॥१५९॥
सर्वान् संभोजयामास प्रसादं हलधारिणः ।
भुक्त्वा प्रसादं ते सर्वे शशंसुर्वैष्णवोत्तमाः ॥१६०॥
स्वं स्वं स्थानं गतास्तं हि नत्वा भास्करनन्दनम् ।
एवं बहुविधा लीला नारदस्य महात्मनः ॥१६१॥

नुष्य नहीं हैं। ऐसा गान हमने कभी नहीं सुना है। अनन्तर हरिदासजी भट्टजी को कुछ सुनाने के लिये प्रार्थना करने लगे। वे सप्तस्वर वीणा लेकर भागवत के पद्यों को गाने लगे। सब कोई विस्मय को प्राप्त होकर कहने लगे-धन्य हैं धन्य हैं आप साक्षात् नारद हैं। श्रीहरिदासजी, नागाजी आदिक परम हर्ष को प्राप्त हुए। राजभोग हुआ, आरती हुई।

एकदा दीक्षितः श्रीमानुच्चग्रामं समास्थितः ।
देहकुण्डसमीपस्थ अटोराख्ये गिरौ वरे ॥९३॥
गोदोहनं प्रकुर्वंतं गोपपुत्रं ददर्शह ।
काचिद्गोपी च तरुणी वत्सं जग्राह यत्नतः ॥९४॥
गोदोहनकरो गोपस्तामुवाच हसन्निह ।
नागमिष्याम्यहं प्रातः गोदोहनकृते तत्र ॥९५॥
प्रतिज्ञातं न मे दत्तं त्वया भामिनि किंचन ।
सा च गोपी तदा प्राह दास्ये सर्वं न संशयः ॥९६॥
सायं मे गृहमागच्छ दास्ये त्वां नवनीतकम् ।
मिश्रिकामिश्रितं दिव्यं प्रतिज्ञातं हि यच्च तत् ॥९७॥
तच्छ्रुत्वा प्रहसन् गोपः किशोरो गतवांस्ततः ।
सा च गोपी गता तद्वद् दुग्धमादाय वै गृहम् ॥९८॥
श्रीनारायणभट्टश्च ध्यानस्तिमितलोचनः ।
ललितां गोपिकां तां च गोपं कृष्णं ददर्शह ॥९९॥
एकदा गोपिकारूपं कृत्वा नारायणो मुनिः ।
कालिन्द्या निकटे स्थानं वृन्दारण्ये जगामह ॥१००॥
यत्रैव भगवान् कृष्णो रासलीलां करोति हि ।
पुंसा नैव गतिर्यत्र पुंभावेन कथंचनः ॥१०१॥

एक समय देहकुण्ड के पास अटोरागिरि पर गोदोहन करता हुआ एक गोपबालक को आपने देखा । आपने और भी किसी गोपी को बछड़ा पकड़ती हुई खड़ी देखा । गोपबालक ने हँसकर कहा-मैं कल नहीं आऊँगा । तुमने जो कहा था सो नहीं दिया । गोपी ने कहा-नहीं नहीं, तुम सन्ध्या को हमारे घर पर अवश्य आय जाना । मैं मिश्री-मक्खन अवश्य देऊँगी । बालक तो अन्तर्द्धान हो गया तथा गोपी दूध लेकर वहाँ से चल पड़ी । श्रीभट्टजी ध्यान करके जान गये कि वह गोपी ललिता तथा वह बालक श्रीकृष्ण हैं ॥९३-९९॥

गोपीरूपो मुनिस्तत्र वीणाहस्तो व्यदृश्यत ।
तं दृष्ट्वा गोपिकाः सर्वा एह्येहीत्यब्रुवंस्तदा ॥१०२॥
उपवीणय देवेशं श्रीराधारमणं प्रभुम् ।
कृतांजलिपुटो भट्टो निषसाद तदाज्ञया ।
तदोपवीणयामास नारदः स्त्रीवपुर्धरः ॥१०३॥
गोप्यो गानं तदा चक्रुः प्रसन्नो भगवानभूत् ।
वरं ददौ दीक्षिताय पश्य लीलां सदा मम ॥१०४॥
पुनरंतर्दधे सर्वः सकृष्णो रासमण्डलः ।
नारदोऽपि मुनिस्तत्र प्रणम्य जगदीश्वरम् ॥१०५॥
पुनर्जगाम वेगेन ह्युच्चग्रामं निजं ततः ।
एवं बहुविधां लीलां पश्यन् कृष्णस्य नित्यशः ॥१०६॥
दिव्यरूपो मुनिश्रेष्ठो मानुषं रूपमास्थितः ।
लीला नित्या व्रजो नित्यो दिव्यरूपो न संशयः ॥१०७॥
दिव्यदृष्ट्यैव दृश्येत न दृश्यश्चर्मचक्षुषा ।
किंतु प्राकृतदृष्टीनां प्राकृतो दृश्यते नृणाम् ॥१०८॥
कल्पवृक्ष इवैवार्थं नानाश्चर्यप्रदो नृणाम् ।
आचार्यकृपया सर्वैर्यथार्थो दृश्यते व्रजः ॥१०९॥

एक समय गोपीरूप धारण कर आप वृन्दावन गये । जहाँ रासलीला होती है तथा जहाँ पर पुरुषों का गमन नहीं है । भट्टजी वीणा हाथ में लेकर बजाते हुए श्रीराधारमणजी की स्तुति करने लगे । उधर गोपियों का गान हो रहा था । श्रीराधारमणजी प्रसन्न होकर उनको वर देने लगे कि-तुम सदा सर्वदा मेरी लीलाओं को देखोगे । ऐसा कह कर श्रीहरि रासमण्डली के साथ अन्तर्द्धान हो गये । भट्टजी ऊँचेग्राम के लिये चल दिये । इस प्रकार दिव्यरूप से वे नित्य लीलाओं का दर्शन करते थे । क्यों कि लीला नित्य हैं, व्रज भी नित्य है, परन्तु दिव्यदृष्टि से उनका अनुभव होता है । चर्मचक्षुः से नहीं है । प्राकृत दृष्टि

आचार्यो हि सदा सेव्यो व्रजदर्शनकांक्षिभिः ।
उपायो नापरो ह्यत्र समीचीनो न संशयः ॥११०॥
अथैको ब्राह्मणो भक्तस्तत्रासीद्वैष्णवो महान् ।
भाषापद्यैः सविविधैः नित्यं स्तौति स्म केशवम् ॥१११॥
सूरदासाह्वयो धीमान् उच्चग्रामे स आगतः ।
ददर्श समुपासीनं व्रजाचार्यं मुनीश्वरम् ॥११२॥
सूरस्तं श्रावयामास कृष्णलीलामयं पदम् ।
श्रीनारायणभट्टं च तुष्टाव प्रीतमानसः ॥११३॥
तमुवाच महाप्राज्ञः श्रीभट्टो ज्ञानिनां वरः ।
कृष्णभक्त प्रसन्नोऽस्मि वरं ब्रूहि ददामि ते ॥११४॥
सूरदासस्तदा प्राह कृतांजलिपुटः शनैः ।
नारदो भगवान् साक्षात् ज्ञातोऽसि मुनिसत्तम ॥११५॥
जगतामुपकाराय मानुषं वपुरास्थितः ।
उपदेशकरो नित्यं कृष्ण एव न संशयः ॥११६॥
आचार्यो भगवान् साक्षादिति मे निश्चिता मतिः ।
विज्ञप्तिं शृणु मे स्वामिन् कृपां कुरु ममोपरि ॥११७॥

से प्राकृतरूप दीख पड़ते हैं। वे सब कल्पवृक्ष की भाँति नाना आश्चर्य को देने वाले हैं। आचार्यों की कृपा से यथार्थ स्वरूप का अनुभव होता है। व्रजदर्शन के लिये इच्छुक व्यक्ति नित्य आचार्यों की सेवा करें। इससे अन्य कोई उपाय नहीं है ॥१००-११०॥

अनन्तर महान् वैष्णव, महाभक्त, सूरदास नामक विप्र ऊँचेग्राम में आकर भट्टजी को कृष्णलीलाओं से युक्त पदों को सुनाने लगे तथा भट्टजी को स्तुति करने लगे। भट्टजी ने प्रसन्न होकर कुछ वर माँगने को कहा!! सूरदासजी कहने लगे आप साक्षात् नारदजी हैं, जगत् के उपकारार्थ आये हुए हैं। आचार्य्य भगवत् स्वरूप होते हैं। मेरी एक विज्ञप्ति है कि आप कहिये इस समय श्रीकृष्णचन्द्र कहाँ है? मैं अन्ध

अधुना कृष्णचन्द्रो हि वर्तते कुत्र तद्वद ।
कथं मे दर्शनं भूयाज्जन्मांधस्य जगद्गुरो ॥११८॥
श्रीनारायणभट्टश्च व्रजाचार्य उवाच तम् ।
अधुनैव गतः कृष्णः सखीगिरि-समीपतः ॥११९॥
बरसानुसमीपे हि चारयन् गाः सखानुगैः ।
त्वं गच्छ बरसानुं हि यदि ते दर्शने मनः ॥१२०॥
कियद्दूरेऽधुना मार्गे गोपालस्त्वां मिलिष्यति ।
तच्छ्रुत्वा सूरदासोऽपि नत्वा भट्टं मुनीश्वरम् ॥१२१॥
मार्गं तदैव जग्राह बरसानोर्महामनाः ।
कियद्दूरगतं सूर उच्चग्रामाच्छनैः शनैः ॥१२२॥
शब्दं शुश्राव हेहीति गोपवर्यस्य धावतः ।
तच्छ्रुत्वा सूरदासोऽपि मार्गे स्थित्वा ब्रवीद्वचः ॥१२३॥
हे हि शब्दः कृतः केन मार्गं मे भण्यतामितः ।
गोपालस्तमुवाचेदं सन्मुखे मार्ग एव हि ॥१२४॥
पुनः प्रोवाच तं सूरो हस्तं दत्वा नयस्व माम् ।
अन्धोऽहं नैव पश्यामि मार्गं गर्त्तादिदूषितम् ॥१२५॥
गोपालोऽपि तदागत्य हस्तं दत्वा प्रयत्नतः ।
मार्गे नीत्वा च तं सूरं गच्छस्वेति तदाब्रवीत् ॥१२६॥
तदा तद्धस्तसंस्पर्शात् सूरो जातः सुलोचनः ।
ततो ददर्श गोपालं श्यामसुन्दरविग्रहम् ॥१२७॥

हूँ। उनका दर्शन कैसे होगा? भट्टजी कहने लगे कि अभी श्रीकृष्ण सखीगिरि से गोचारण करते हुए सखाओं के साथ बरसाने में गये हैं। तुम कुछ दूर आगे जाओ, वहाँ तुमको मिल जावेंगे। अब विप्र उस मार्ग में जाने लगे। कुछ दूर जाकर आपने बालकों का हि हि शब्द सुना। एक गोपाल को मार्ग पूछने पर गोपाल ने कहा कि आगे रास्ता है। सूर ने कहा मेरे हाथ पकड़ कर ले चलिये। गोपाल हाथ पकड़ कर उस मार्ग

हस्ताद्धस्तं समाकृष्य दुद्राव श्रीहरिस्ततः ।
गावो गच्छन्ति मे चेति प्रोक्त्वा सूरं गिरिं प्रति ॥१२८॥
सूरस्तमनुदुद्राव नैव प्राप कथंचन ।
न च गावस्तु दृश्यन्ते न गोपालोऽपि तत्र हि ॥१२९॥
बरसानौ गतः सूरो गिरिमारूरुहे तदा ।
नैव गावोऽपि दृश्यन्ते चतुर्दिक्षु समंततः ॥१३०॥
पप्रच्छ मनुजान् सूरो गावः कुत्र गता इति ।
गोपालोऽपि गतः कुत्र श्यामसुन्दरविग्रहः ॥१३१॥
जनाः प्रोचुस्तदा तं वै नैव कालो गवामयम् ।
कथं भ्रान्तोऽसि सूर त्वं तव किं दृश्यतेऽधुना ॥१३२॥
सूरदासोऽपि तं ज्ञात्वा गोपालं श्रीहरिं परम् ।
उवाच प्रणयात्तं वै किंचित् कुपितमानसः ॥१३३॥
हस्तमाकृष्य यातोऽसि ज्ञात्वा मां निर्बलं प्रभो ।
हृदयाद्यास्यसे देव पौरुषं गणये तदा ॥१३४॥
त्वां दृष्ट्वा नैव पश्यामि प्राकृतं मानुषं प्रभो ।
अतोऽन्धं कुरु मां देव यथा पूर्वं नमोऽस्तु ते ॥१३५॥

में पहुँचाय कर कहने लगा अब जाओ । उस बालक के हस्त स्पर्श से उनके नेत्र खुल गये तथा सूर ने गोपाल को श्यामसुन्दर रूप से देखा । बालक उनके हाथों से अपने हाथ छुड़ा कर "मेरी गाय चली गई मैं जाता हूँ" ऐसा कह कर वह बालक अदृश हो गया । सूरजी पीछे-पीछे भागे परन्तु फिर बालक का दर्शन नहीं मिला । वे बरसाने में जाकर पूछने लगे । सब ने कहा अब गौचारण का समय नहीं है । तुम इस प्रकार भ्रान्त क्यों हो रहे हो ? सूर उस बालक को साक्षात् श्रीहरि जान कर कुछ प्रणय क्रोध के साथ कहने लगे कि दुर्बल मेरे हाथों से हाथ छुड़ाकर चले गये हो, यदि हृदय से चले जाओगे तो तुम्हारे पौरुष को जानूँगा । तुमको मैं प्राकृत मनुष्य नहीं जानता हूँ । तुम तो स्वयं श्री-

इत्युक्त्वा सूरदासोऽपि यथा पूर्वोऽभवद्द्विजः ।
जगे श्रीकृष्णचन्द्रस्य नानालीलामयं पदम् ॥१३६॥
नागाजिर्वैष्णवश्चैको विरक्तानां स चाग्रणीः ।
अन्ये महानुभावाश्च हरिदासादयो परे ॥१३७॥
आगच्छन्ति स्म बहवो वेणीदर्शनकांक्षिणः ।
समाजः सुमहानासीदेकदा देवमन्दिरे ॥१३८॥
तन्मध्ये शुशुभे प्राज्ञः श्रीमद्भास्करनन्दनः ।
बलदेवाग्रतः सर्वे मिलिता ज्ञानिनां वराः ॥१३९॥
चक्रुः सर्वे मिलित्वाथ श्रीकृष्णगुणकीर्त्तनम् ।
दामोदरोऽथ गोस्वामी पुष्पमालादिकं बहु ।
बलदेवप्रसादं स सर्वेभ्यः प्रददौ मुदा ॥१४०॥
मन्दिरे संस्थिताः सर्वे तन्मध्ये दीक्षितः स्थितः ।
गोपालोपि महाप्राज्ञो भट्टो भास्करसंभवः ॥१४१॥
बहवो वैष्णवास्तत्र मन्दिरे समुपागताः ।
प्रपच्छ व्रजमाहात्म्यं कश्चिद्वै वैष्णवोत्तमः ॥१४२॥
कश्चित्पप्रच्छ कृष्णस्य रहस्यं भूमिदुर्लभम् ।
भक्तिमार्गांश्च पप्रच्छ कश्चित् पुष्टिरसादिकान् ॥१४३॥
मर्यादामार्गमेवापि कृष्णभक्तेः पृथक् पृथक् ।
सर्वेषामुत्तरं श्रीमान् ददौ भास्करनन्दनः ॥१४४॥

हरि हो । तुमको मेरा नमस्कार है । अब सूरदासजी पहले स्वरूप में आ गये तथा नाना लीलामय पद्यों को गाने लगे ॥१११-१३६ । एक समय महाबिरक्त नागाजी, श्रीहरिदास आदिक वैष्णवगण वेणीदर्शन करने के लिये आये । बलदेवजी के मन्दिर में बड़ा भारी समाज हुआ । सब कोई श्रीकृष्ण के गुण कीर्त्तन करने लगे । दामोदरगोस्वामी ने सबको पुष्पमाला और बलदेवजी का प्रसाद दिया । वहाँ भट्टजी के बड़े भैया गोपालजी मौजूद थे । किसी ने व्रजमहिमा, किसी ने श्रीकृष्ण की

ग्रन्थे भक्तिविवेकाख्ये मार्गाः सर्वे प्रकाशिताः ।
तच्छ्रुत्वा हर्षमापुस्ते तत्रस्था वैष्णवा जनाः ॥१४५॥
कश्चिद्वैष्णवः प्राह श्रीहरिदासं मुदान्वितः ।
गाने त्वं कुशलः सम्यक् पदं श्रावय केशवम् ॥१४६॥
बलदेवं तथा सम्यक् त्वत्समो नापरो भुवि ।
तच्छ्रुत्वा हरिदासोऽपि सर्वेषां शृण्वतां सताम् ॥१४७॥
पदं संश्रावयामास बलदेवं सहानुजम् ।
श्रुत्वा ते वैष्णवाः सर्वे साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ॥१४८॥
तं कश्चिद्वैष्णवः प्राह गन्धर्वोऽयं न मानुषः ।
गानमेतादृशं सम्यग् नास्माभिस्तु श्रुतं क्वचित् ॥१४९॥
ततश्च हरिदासोऽपि प्राह भास्करनन्दनम् ।
श्रीमुखादमृतं किंचिच्छ्रोतुमिच्छामहे मुने ॥१४७॥
श्रावितं बलदेवाय यथा ज्ञानं मया पदम् ।
भवाञ्छ्रावयतु श्रीमन् बलदेवाय किंचन ॥१४८॥
तच्छ्रुत्वा दीक्षितः श्रीमान् प्रणम्य श्रीहलायुधम् ।
सप्तस्वरमयीं वीणां जग्राह प्रहसन् विभुः ॥१४९॥
श्रीमद्भागवतं तत्र स तया वीणया जगौ ।
तच्छ्रुत्वा वैष्णवाः सर्वे शिरश्चालनपूर्वकम् ॥१५०॥
धन्य धन्येति ते सर्वे प्रशशंसुर्मुनीश्वरम् ।
आश्चर्यं लेभिरे सर्वे स्थिता ये ब्राह्मणोत्तमाः ॥१५१॥

रहस्य बातें, किसी ने भक्तिमार्ग, किसी ने मर्यादा तथा पुष्टिमार्ग को पूछा। भट्टजी ने सबको यथा-योग्य उत्तर दिये। जो कि भक्तिविवेक ग्रंथ में लिखित हैं। किसी वैष्णव ने श्रीहरिदासजी की प्रार्थना की-आप गानविद्या में पण्डित हैं आपके सदृश अधिक और कोई नहीं है। श्रीबलदेवजी को गान सुनाइये। तब श्रीहरिदासजी पद सुनाने लगे, वैष्णवों ने साधु-साधु प्रशंसा की। किसी ने कहा कि आप साक्षात् गन्धर्व हैं म-

कथयन्ति स्म ते सर्वे मनुष्योऽयं न कर्हिचित् ।
ज्ञाने गाने तथा भक्त्या न चास्य सदृशो भुवि ॥१५२॥
दृष्टो वापि श्रुतो वापि मनुष्योऽस्माभिरेव हि ।
अयं तु नारदः श्रीमान् स्वयमास्ते न संशयः ॥१५३॥
अन्यथाऽलौकिकी विद्या कथमस्य भवेदिह ।
हरिदासादयः सर्वे नागाजि-प्रमुखास्तथा ॥१५४॥
परं हर्षं गताः सर्वे श्रुत्वा तृप्तिं न लेभिरे ।
समाप्याथ समाजं ते श्लाघां चक्रुर्मुदान्विताः ॥१५५॥
अहोति हर्षिताः सर्वे वयमत्र समागताः ।
किं किं न प्राप्नुयाज्जीवो हरिदाससमागमे ॥१५६॥
आनन्दं नापरं विद्मः श्रीमद्भागवताद्वयम् ।
तत्रापि भवता श्रीमच्छ्रावितं महदद्भुतम् ॥१५७॥
कथितुं नैव शक्ताः स्म आनन्दोऽभूद्यथा हि नः ।
इत्युक्त्वा गन्तुकामांस्तान् श्रीमद्भास्करनन्दनः ॥१५८॥
विनयात् स्थापयामास बलदेवस्य मन्दिरे ।
कृत्वारात्तिं च देवस्य राजभोगादनन्तरम् ॥१५९॥
सर्वान् संभोजयामास प्रसादं हलधारिणः ।
भुक्त्वा प्रसादं ते सर्वे शशंसुर्वैष्णवोत्तमाः ॥१६०॥
स्वं स्वं स्थानं गतास्तं हि नत्वा भास्करनन्दनम् ।
एवं बहुविधा लीला नारदस्य महात्मनः ॥१६१॥

नुष्य नहीं हैं। ऐसा गान हमने कभी नहीं सुना है। अनन्तर हरिदासजी भट्टजी को कुछ सुनाने के लिये प्रार्थना करने लगे। वे सप्तस्वर वीणा लेकर भागवत के पद्यों को गाने लगे। सब कोई विस्मय को प्राप्त होकर कहने लगे-धन्य हैं धन्य हैं आप साक्षात् नारद हैं। श्रीहरिदासजी, नागाजी आदिक परम हर्ष को प्राप्त हुए। राजभोग हुआ, आरती हुई।

कृष्णाज्ञयावतीर्णस्य को वा वक्तुं क्षमः पुमान् ।
एकदा भाद्रकृष्णे तु जन्माष्टम्यां महामतिः ॥१६२॥
लाडिलेयस्य कृष्णस्याभिषेकं कृतवान् मुनिः ।
लाडिलेयस्तदा कृष्णः प्रत्यक्षोऽभूत्परात्परः ॥१६३॥
नन्दगोपादयः सर्वे गोप्यश्च दर्शनं ददुः ।
तद्दृष्ट्वा कृत-कृत्योऽभून्नारदो भट्टरूपधृक् ॥१६४॥
दामोदरश्च गोस्वामी दृष्ट्वा हर्षं जगामह ।
गोपालोऽपि महाप्राज्ञः प्रेमानन्दजलाकुलः ॥१६५॥
दानं ददौ च विप्रेभ्यः उत्सवं च चकारह ।
एवं हि चैत्रशुक्ले च नवम्यां रामरूपधृक् ॥१६६॥
लाडिलेयः स्वभक्ताय दर्शनं दत्तवान् प्रभुः ।
एकदा भाद्रशुक्ले च द्वादश्यां वामनस्य हि ॥१६७॥
जन्मोत्सवं स कृतवान् नारायणः महामतिः ।
दर्शनं दत्तवान् साक्षात्लाड़िलेयः स्वयं प्रभुः ॥१६८॥
नारदाय तदा भूत्वा वामनो भगवान् हरिः ॥१६९॥

सब ने भोजन किया तथा प्रशंसा करते हुए अपने-अपने स्थान को चले गये ॥१३७-१६१॥

एक समय भाद्रमास जन्माष्टमी के दिवस मुनिराजजी लाड़िलेयजी का अभिषेक कर रहे थे । उस समय लाड़िलेयजी परिकर के साथ प्रकट हुए । भट्टजी, दामोदरजी, गोपालजी भी बड़े हर्ष को प्राप्त हुए । ब्राह्मणों को दान दिया गया तथा बड़ा भारी उत्सव मनाया गया । इस प्रकार रामनवमी प्रभृति मनाई गईं ॥१६२-१६७॥

एक समय भाद्रशुक्लपक्ष में द्वादशी तिथी में वामनदेवजी का जन्माभिषेक हो रहा था । लाड़िलेय जी वामन स्वरूप होकर दर्शन देने लगे तथा कहने लगे भो भट्ट ! वर माँगो । भट्टजी ने कहा–व्रज का

स्तुतिं कृत्वा तदा भट्टः कृतांजलिपुटः स्थितः ।
तदा श्रीवामनो भट्टं वरं ब्रूहीत्युवाचह ॥१७०॥
अथ तं प्रार्थयामास भट्टो भास्करसंभवः ।
व्रज उद्धारितो देव तवाज्ञा परिपालिता ॥१७१॥
कीर्त्तयन्ति व्रजे सर्वे राधाकृष्णेऽति सर्वदा ।
द्विपंचाशत् ग्रन्थाश्च वचनात्ते मया कृताः ॥१७२॥
श्रीभागवतटीका च लाडिलेय कृता मया ।
रसिकाह्लादिनी नाम यस्यां कृष्णप्रधानता ॥१७३॥
तवैव कृपया स्वामिंस्तव सेवा मया कृता ।
हृदि ध्यानपरो वक्त्रे राधाकृष्णेऽति कीर्त्तयन् ॥१७४॥
तव जन्मदिने देव त्यजेयं मानुषीं तनुम् ।
इत्येव प्रार्थये देव त्वत्तो नान्यं वृणे वरम् ॥१७५॥
लाड़िलेयस्तदा प्राह वामनरूपमास्थितः ।
अत्यन्त-प्रियकृद्भित्यं त्वं मे भक्तोऽसि नारद ।
वियोगं न सहे वत्स भक्तस्याहं हि सर्वदा ॥१७६॥
तथापि मर्त्यलोकोऽयं नास्मिंस्तिष्ठन्ति केचन ।
अतः संवत्सरान्ते हि भविता ते मनोरथः ॥१७७॥
तव वंश-समुद्भूता उच्चग्रामनिवासिनः ।
त्रिवेणीसंस्थिताः सर्वे परं मोक्षं व्रजन्तु ते ॥१७८॥

उद्धार तो हो गया । तुम्हारी आज्ञा का पालन भी हुआ । सब कोई राधाकृष्ण का कीर्त्तन कर रहे हैं । मैंने बावन ग्रन्थ आपकी आज्ञा से बनाये । रसिकाल्हादिनी टीका भी बन गई । अब मैं प्रार्थना करता हूँ कि-हृदय में आपका ध्यान तथा मुख में आपका राधाकृष्ण नाम कीर्त्तन करता हुआ आपका इस जन्मदिवस में शरीर त्याग करूँ । लाड़िलेयजी कहने लगे-भक्तविरह अत्यन्त दुःखमय होता है । मैं भक्त का विरह कभी नहीं सहता हूँ । तो भी यह मनुष्य लोक है । आगे के संवत्सर में

सर्वे मोक्षं गमिष्यन्ति भविष्या वंशजाश्च ते ।
इत्युक्त्वा वामनः साक्षात् लाडिलेयो बभूवह ॥१७६॥
अथ संवत्सरे पूर्णे भाद्रे शुक्ले शुभे दिने ।
एकादश्यां महाप्राज्ञो नारदो दीक्षितो विभुः ॥१८०॥
दामोदराय प्रददौ ब्रजाचार्यत्वमात्मनः ।
सर्वे समागतास्तत्र वैष्णवाः संप्रदायिनः ॥१८१॥
सर्वेषां संमतेनैव निजस्थानेऽभिषेचितः ।
नारायणेन स्वेनैव मन्त्रैर्वेदोद्भवैस्तदा ॥१८२॥
दामोदरस्तदा श्रीमान् गादीसंस्थोऽधिकं बभौ ।
अभिषेचुश्च ते सर्वे ब्राह्मणा वैष्णवा मुनिम् ॥१८३॥
दामोदराय ते सर्वे ब्रजभक्ता बलिं ददुः ।
श्रीनारायणभट्टश्च तदा गोस्वामिने प्रभुः ॥१८४॥
दत्वाशीर्वचनं सर्वं शिक्षां तस्मै ददौ स्वयम् ।
ब्रजस्य भक्तिः कर्त्तव्या सेवनीया ब्रजस्य भूः ॥१८५॥
ब्रज एव परं धाम ब्रजः श्रीकृष्णविग्रहः ।
श्रीनन्दनन्दनः कृष्णो ब्रजं त्यक्त्वा न गच्छति ॥१८६॥
स एव चिंतनीयोऽयं श्रीराधा-सहितः सदा ।
बलदेवः सदा सेव्य इष्टदेवः प्रभुर्मम ॥१८७॥

तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी । तुम्हारे वंशोत्पन्न, ऊँचेग्रामवासी, त्रिवेणी-स्थित सब कोई परमोक्ष को प्राप्त करेंगे । ऐसा कह कर आप बामनरूप से फिर लाडिलेय स्वरूप हो गये ॥१६८-१७६॥

इस प्रकार एक वर्ष अतीत हो गया । भाद्र शुक्लपक्ष एकादशी तिथी आई । नारद दीक्षितजी ने सबको बुलाया । दामोदरपुत्र को अपनी ब्रजाचार्य्य पदवी दी । दामोदरजी पिता की गद्दी पर बैठने लगे । ब्राह्मण-वैष्णवों ने अभिषेक किया । नारायणभट्टजी उन्हें आशीर्वाद दे कर उपदेश देने लगे-ब्रज की भक्ति तथा ब्रज की सेवा सदा सर्व्वदा करते रहना । ब्रज

मयैव लिखितो यन्त्रः स च सेव्यः प्रयत्नतः ।
(यन्त्रः श्रीनिवगारू प्रभामंडलाख्यः कुलदेवतायन्त्रः)
श्रीकृष्णेन स्वयं दत्तो लाड़िलेयश्च मूर्तिधृक् ॥१८८॥
सेवनीयस्त्वया देवो बलदेवसमीपगः ।
लाड़लीलालयोः सेवा त्वया कार्यातिभक्तितः ॥१८९॥
लीलोत्सवादिकं सर्वं कर्त्तव्यं सर्वदा प्रभोः ।
सेवा सदैव कर्त्तव्या याचनीयं न किञ्चन ॥१९०॥
प्रीतो भवतु देवेश अयमेव परो वरः ।
ग्रन्था विलोकनीया ये सेवायां कथिता मया ॥१९१॥
श्रीमद्भागवतं चापि सेवनीयं पदे पदे ।
सर्वेभ्यो ब्रजभक्तेभ्यः शिक्षणीयं त्वयानघ ॥१९२॥
नारायणाख्यदासस्य वंश्या ये ब्रजमास्थिताः ।
सेवां कुर्वन्तु देवस्य शिक्षणीया त्वया च ते ॥१९३॥
अन्यांश्चापि महाप्राज्ञः स्वशिष्यान् हि तदा प्रभुः ।
आज्ञापयामास मुदा सर्वेषां शृण्वतामिदम् ॥१९४॥

परमधाम तथा साक्षात् श्रीकृष्ण विग्रह है । श्रीनन्दनन्दन ब्रज छोड़कर अन्यत्र नहीं जाते हैं ॥१८०-१८६॥

श्रीराधिका के साथ श्रीकृष्ण सर्व्वदा चिन्तनीय हैं ! इष्टदेव-प्रभु बलदेवजी की सर्व्वदा सेवा करना चाहिये । मेरे द्वारा लिखित यन्त्र की नित्य सेवा करना । श्रीकृष्ण ने स्वयं जिस लाडिलेय मूर्त्ति को दी थी उस मूर्त्ति को बलदेवजी के निकट रख कर सर्व्वदा सेवा करते रहना । भक्ति से लाडिलीलाल की सेवा करना । सर्व्वदा लीला-उत्सवादि करते रहें, सेवा भी करते रहें । प्रभु से किसी वस्तु की प्रार्थना नहीं करें । भगवान की प्रसन्नता ही सबसे उत्कृष्ट वर है । सर्व्वदा ग्रन्थावलोकन करते रहना । पद पद में भागवत् की सेवा करें । समस्त ब्रज भक्तों को भी इसका उपदेश सिखाना । नारायणदास के वंशज, अन्य सबको सेवा

दामोदरो हि मन्तव्यो मत्स्थाने सर्वदा प्रभुः ।
अहं दामोदरः साक्षात् मद्रूपोऽयं न संशयः ॥१९५॥
इत्युक्त्वा नारदः श्रीमान् बलदेवं पुनः पुनः ।
प्रदक्षिणी कृत्य मुदा त्रिवेणी-मध्यतः स्थितः ॥१९६॥
सर्वे समास्थिता शिष्या गोस्वामीप्रमुखास्तदा ।
राधाकृष्णेति नामानि कीर्त्तयन्तो मुदान्विताः ॥१९७॥
श्रीभट्टः कृपया तान्वै कृष्णभक्तिं तदादिशत् ।
द्वितीये द्विवसे श्रीमद्वामनस्याभिषेचनम् ॥१९८॥
कृत्वा दामोदरस्तस्य चारार्त्तिं कतवान् प्रभोः ।
श्रीभट्टस्तस्य शिष्याश्च दर्शनार्थं समाययुः ॥
पंचामृतं गृहीत्वैव प्रणम्य शिरसा प्रभुम् ॥१९९॥
पुनस्तत्रागतो भट्टस्त्रिवेणीमध्यमस्थले ।
सर्वतः संस्थिताः सर्वे व्रजभक्ताः समागताः ॥२००॥
दामोदरश्च तत्रैव गोस्वामी सन्मुखे स्थितः ।
श्रीनारायणभट्टश्च कृष्णध्यान-परायणः ॥२०१॥
सर्वेषां पश्यतां तेषां तत्रैवान्तर्दधे प्रभुः ।
दिवि दुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥२०२॥

करें । आप इस प्रकार अन्यशिष्यों को बुलाकर कहने लगे कि दामोदर मेरा रूप है, मेरे स्थान पर विराजित है । उसे मेरे सदृश जानना चाहिये ॥१८७-१९८॥

आप ऐसा कह कर श्रीबलदेवजी को प्रणाम तथा प्रदक्षिण कर त्रिवेणी की बीच में गये । दूसरे दिन दामोदरजी ने वामनजी का अभिषेक किया, आरती भी की । श्रीभट्टजी तथा उनके शिष्य सब दर्शन के लिये आये । भट्टजी पञ्चामृत ग्रहण कर साष्टांग प्रणाम करते हुए फिर त्रिवेणी के बीच मैं आये । उनके चारों ओर से व्रजवासी घिर आए थे । उनके पुत्र दामोदरजी समक्ष में विराजमान थे । भट्टजी श्रीकृष्ण का

धन्य धन्येति च प्रोचुः कृष्ण-कृष्णेति केचन ।
जय जयेति प्राज्ञाः च प्रोचुर्विप्राः समंततः ॥२०३॥
उत्सवं चक्रिरे सर्वे गोस्वामिप्रमुखास्तदा ।
य इदं शृणुयान्नित्यं यश्चापि परिकीर्त्तयेत् ॥२०४॥
कृष्णभक्तिर्भवेत्तस्य नारदस्य प्रसादतः ।
श्रीकृष्णस्यापि भक्तस्य चरितं लोकपावनम् ॥२०४॥
तदेव शृणुते भक्तो नान्य-गाथां कथंचन ।
श्रीमद्भागवते चापि तथैव मुनिभाषितम् ॥२०५॥
तत्कथ्यतां महाभाग यदि कृष्णकथाश्रयम् ।
अथवास्य पदांभोजमकरन्दलिहां सताम् ॥२०६॥
किमन्यैरसदालापैरायुषो यदसद्व्ययः ।
इत्यादि बहुधा तत्र प्रमाणं परिकीर्त्तितम् ॥२०७॥
नारायणस्य चरितामृत-सागराच्च
यो वै समुद्धृतमिदं लघुबिन्दुमेतत् ।
भक्त्यापि चेच्च श्रवणांजलिना मनुष्यो
नश्येत तस्य भव-रोगजमाशु दुःखम् ॥२०८॥

ध्यान करते हुए अन्तर्द्धान हो गये । कोई २ पुष्पों की वृष्टि करने लगे कोई-कोई जय ध्वनि करने लगे । कोई-कोई वा धन्यवाद देने लगे । आकाशमें दुन्दुभी बजने लगीं, वैष्णवगण महामहोत्सव मनाने लगे । जो कोई पुण्यवान् इस चरित्र का श्रवण तथा कीर्त्तन करेगा उसको नारदजी की कृपा से अवश्य भक्ति मिलेगी । श्रीकृष्ण-भक्त का चरित्र लोकपावनकारी होता है । उसी को सुनना चाहिए अन्य कुछ नहीं सुनना । श्रीभागवत में मुनि ने कहा है यदि श्रीकृष्ण कथायुक्त हो अथवा उनके चरण-कमल मकरन्द के इच्छुक भक्तों का चरित्र हो तो उसे अवश्य कहैं । अन्य असद्वार्त्ता में कुछ नहीं रक्खा है तथा आयु क्षीण हो रही है ॥१९९-२०८॥

इति श्रीनारदावतारनारायणभट्टाचार्य्यकुलोद्भवगोस्वामीश्रीरघुनाथात्मज गोस्वामीजानकीप्रसादविरचिते श्रीनारायणभट्टाचार्यचरितामृते पञ्चम आस्वादः ॥५॥



ततः सर्वैं व्रंजस्थैश्च दामोदर उदारधीः ।
गुरुत्वे मानितः साक्षात् पितृसिंहासने स्थितः ॥१॥
तथैव रासलीलां च तथैव मन्दिरोत्सवम् ।
तथैव व्रंजयात्रां च गोस्वाम्यपि चकारह ॥२॥
सर्वे शशंसिरे शिष्याः स्वामिन्दामोदर प्रभो ।
नारायणतनुस्त्वं हि साक्षान्नास्त्यत्र संशयः ॥३॥
दामोदरचरित्राणि सन्त्यनेकानि मानुषैः ।
न शक्यन्ते प्रवक्तुं हि साकल्येन प्रयत्नतः ॥४॥
एका तु गुर्जरी तत्र स्थिता गोमयहारिणी ।
मन्दिरस्य हि या गावस्तासां सेवां चकारह ॥५॥
दामोदरस्य शिष्या सा ह्यु च्चग्रामनिवासिनी ।
गुरोः पादोदकं नित्यं गृह्णती श्रद्धयान्विता ॥६॥

उसके अनन्तर उदारमना श्रीदामोदर जी समस्त व्रजवासियों के गुरु रूप करके माने गये तथा पितृ-सिंहासन पर आरूढ़ हुए। गोस्वामी जी वे पहले की भाँति रासलीला, मन्दिरों में उत्सव, ब्रजयात्रा आदि कराने लगे। शिष्य, प्रशिष्य सब उनकी प्रशंसा इस प्रकार करने लगे कि-"हे स्वामिन् ! हे प्रभु दामोदर ! आप नारायणभट्ट जी के साक्षात् अंग स्वरूप हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है।" श्रीगोस्वामी दामोदर जी के चरित्र अनन्त हैं। उन्हें मनुष्य अनेक चेष्टा करने पर भी समस्त नहीं कह सकता है ॥१-४॥
एक समय एक गूजरी जो वहाँ वास करती थी, वह नित्य गोबर बीनती थी तथा मन्दिर को गौओं की सेवा करती थी। वह गूजरी नित्य अपने

एकदा तानसेनस्तु सुरागं दीपकं जगौ ।
अतिभीतोऽपि मनसि शासनाच्चक्रवर्त्तिनः ॥७॥
दीपका ज्वलिताः सर्वे स्वेच्छयैव विनानलम् ।
शशंसुस्तानसेनं ते सर्वे राजसभासदः ॥८॥
किंतु तत्तानसेनस्य शरीरेऽग्निः समाविशत् ।
जगर्ह तानसेनश्च राजभृत्यत्वमात्मनः । ९॥
स सम्राजं प्रणम्याशु निर्जगाम पुराद्बहिः ।
नरयानं समास्थाय गच्छन्मार्गे शनैः शनैः ॥१०॥
अकस्मादागतो यत्र स्थिता गोमयहारिणी ।
किशोरी गुर्जरी शिष्या दामोदरगोस्वामिनः ॥११॥
तं दृष्ट्वा गुर्जरी प्राह ह्यत्रैव स्थीयतां त्वया ।
दीपानलेन दग्धोऽसि चिकित्सां ते करोम्यहम् ॥१२॥
इत्युक्त्वा मेघमल्लारं जगौ सा गुर्जरी तदा ।
मेघैराच्छादितं व्योम शीतो वायुर्ववौ तदा ॥१३॥

गुरु दामोदरजी के चरणोदक श्रद्धा के साथ ग्रहण करती थी। एक समय तानसेनजी ने चक्रवर्त्ती अकबर का शासन पाकर मन में कुछ भय रखकर दीपक राग का गान किया। उस समय अग्नि के बिना ही दीपक सब जलने लग गये तथा सभासदों ने तानसेन की भारी प्रशंसा की। परन्तु उस समय तानसेन के शरीर में अग्निराशि प्रवेश होने लगी तथा तानसेन अपने को राज-भृत्य करके निन्दा करने लगे। वे मनुष्ययान में बैठकर धीरे-धीरे रास्ता चलते हुए उस गोबर बीनने वाली, दामोदरजी की शिष्या, किशोरी, गूजरी के पास हठात् आय पहुँचे। उनको देखकर उस गूजरी ने कहा-यहाँ ही आप ठहरिये, आप दीपानल में दग्ध प्राय हो गये हैं, मैं आपकी चिकित्सा करूँगी ऐसा कहकर वह मल्हार राग गाने लगी। उस समय आकाश मेघों से आच्छादित हो गया और शीतल पवन बहने लगी। प्रचुर वर्षा इस प्रकार हुई, जिससे

जलं ववर्ष तन्मेघस्तानसेनः शीतलोऽभूत् ।
प्रणम्य भुवि कायेन तानसेनस्तामुवाच ॥१४॥
का त्वं देवि कुतश्चेदं प्राप्तं मन्त्रवलं त्वया ।
सर्वाश्चर्यप्रदं ह्येतन् मेघानामुदयो यतः ॥१५॥
ततस्तं गुर्जरी प्राह नेदं मन्त्रवलं मम ।
दामोदरप्रभावेन सर्वमेतद्बलं मम ॥१६॥
तस्य पादोदकं नित्यं गृह्णत्यत्र वसाम्यहम् ।
गवां सेवां प्रकुर्वाणा नान्यज्जानामि किंचन ॥१७॥
तच्छ्रुत्वा तानसेनश्च परं विस्मयमावह ।
दामोदरप्रभावं च प्रशंशन् गृहमाययौ ॥१८॥
भृगुवंशसमुद्भूतः क्षत्रियो योऽभवत्पुरा ।
उदारबुद्धिर्धर्मात्मा सह ओजो वलान्वितः ॥१९॥
भार्गवस्य प्रसादेन चक्रवर्त्ती बभूवह ।
तस्य वंशे भवद्धीमान् राजपुत्रश्चतुर्भुजः ॥२०॥
नाम्ना सोऽपि महाबुद्धिः सर्वधर्मभृतांवरः ।
यशस्वी भुवि विख्यातो महाशीलो महाबलः ॥२१॥

तानसेन स्नान कर शीतल हो गये। आप शरीर से पृथ्वी प्रणाम कर उसको कहने लगे-तुम कौन हो कहाँ से यहाँ आई हो। बड़ी आश्चर्य्य की बात है, कि असमय मेघों की वर्षा हुई। गूजरी ने कहा-यह मेरा बल-प्रभाव नहीं है। गुरु दामोदरजी के प्रभाव से यह मेरा प्रभाव है। मैं वहाँ रह कर नित्य उनके चरणोदक का पान करती हुई गौओं की सेवा करती हूँ। मैं इस स्थानको छोड़कर अन्यत्र नहीं जाती हूँ। उसका इस प्रकार वचन सुनकर तानसेनजी परम विस्मय को प्राप्त हुए तथा श्री-दामोदरजी के प्रभाव की प्रशंसा करते हुए अपने घर गये ॥५-१८॥

भृगुवंश में उदारबुद्धि, धर्म्मात्मा, वीर्य्यवान्, बलशील एक क्षत्रिय रहा। वह भार्गवजी के प्रसाद से चक्रवर्त्ती हुआ था। उसके वंश में

अकस्मादागतस्तत्र यत्र दामोदरः स्थितः ।
गोस्वामी व्रजविख्यातो नारायणसमो मुनिः ॥२२॥
तं दृष्ट्वा मुनिमासीनं ग्रहैश्चेन्दुमिवोदितम् ।
शिष्यैः समावृतं साक्षात् पितृसिंहासने स्थितम् ॥२३॥
तं प्रणम्य महाबुद्धिस्तुतिं चक्रे चतुर्भुजः ।
नारायणतनुस्त्वं हि नारायण इवापरः ॥२४॥
गूढं ब्रवीषि धर्मं भोः शिष्येभ्यो गुरुरूपधृक् ।
महिमानं महाप्राज्ञ को वा वक्तुं क्षमो भवेत् ॥२५॥
सुदेवीं त्वां तु जानीमो महतां वाक्यतः प्रभो ।
आचार्यात्मजरूपं हि कृत्वा चात्र स्थितो व्रजे ॥२६॥
व्रजभूमिरहस्यं च प्रकाशयसि नित्यशः ।
अहमप्यागतो ब्रह्मन् पादमूलमुपासितुम् ॥२७॥
शिष्यं मां कुरु ब्रह्मर्षे रहस्यं मे प्रकाशय ।
कृष्णलीलादर्शनं मे यथा भूयान्निरन्तरम् ॥२८॥

बुद्धिमान् चतुर्भुज नामक राजपुत्र हुआ। वह महान्बुद्धि वाला, धार्मिक-श्रेष्ठ, यशस्वी, जगविख्यात, महान्शील, महाबली था। महान्-बुद्धि वाला वह अकस्मात् व्रजविख्यात नारायणभट्टजी के समान, गोस्वामी दामोदरजी के पास आया तथा ग्रहों के साथ चन्द्रमा उदय की भाँति शिष्यों के साथ पितृसिंहासन में विराजमान उनको देखकर स्तुति करने लगा कि-आप साक्षात् नारायणभट्ट के शरीर हैं मानो दूसरे नारायण प्रभुजी हैं। आप गुरु रूप धारण कर शिष्यों के लिये गूढ़ धर्म्म को सिखाय रहे हैं। आपकी महिमा को कौन वर्णन करने में समर्थ हो सकता है। महत् पुरुषों के वचनों से "आप सुदेवीजी का अवतार हैं" ऐसा हम जान रहे हैं। हे प्रभो! आप आचार्य्यजी के पुत्र रूप से व्रज में विराजमान हैं। आप नित्य व्रजभूमी का रहस्य प्रकाश कर रहे हैं। हे ब्रह्मन् मैं आपके चरणों की उपासना करने के लिये आया हूँ। हे

गौस्वामी च तदा प्राह शृणु वाक्यं चतुर्भुज ! ।
क्षत्रियाश्च समायाताः नैव शिष्याः मया कृताः ॥२९॥
अतिकोमलमार्गो मे क्षत्रियो दाक्षिणो भवेत् ।
किंतु त्वं न भवेस्तादृक् यथान्यः क्षत्रियः क्षितौ ॥३०॥
कुलं ते सर्वतः ख्यातं भृगुवंशसमुद्भवम् ।
भृगुवंशे समुद्भूतो ह्यहं चापि क्षितीश्वर ॥३१॥
अस्माकं तु सदैवासीद्गुरुत्वं ते कुलस्य च ।
शिष्यो भव महाबुद्धे दीक्षां तुभ्यं ददाम्यहम् ॥३२॥
इत्युक्त्वा तं मुनिः शिष्यं चक्रे भूपं चतुर्भुजम् ।
शिक्षां बहुविधां तस्मै ददौ भक्तिं च केशवे ॥३४॥
श्रीकृष्णः सर्वदा सेव्यो राधा-गोपीसमन्वितः ।
व्रजे भक्तिः सदा कार्या वाङ्मनःकायसंभवा ॥३५॥
तत्वत्रयविचारे तु सदा राजन् स्थिरो भव ।
(जीवतत्वं जगत्तत्वं तत्वमीश्वरसंज्ञकम् ।

महर्षे ! मुझे शिष्य कर रहस्यों को बताइये । जिससे मेरा निरन्तर कृष्ण-लीला का दर्शन हो । श्रीदामोदरगोस्वामीजी कहने लगे हे चतुर्भुज ! मेरा वाक्य सुनो । अनेक क्षत्रिय शिष्य होने के लिये यहाँ आये हैं परन्तु मैंने किसी को शिष्य नहीं किया । मेरा यह मार्ग अत्यन्त कोमल अर्थात् सूक्ष्म है । परन्तु तुम अन्य-क्षत्रिय की तरह नहीं हो । हे राजन् तुम्हारा कुल सर्व्वत्र भृगुवंश उत्पन्न करके प्रसिद्ध है । मैं भी भृगुवंश में उत्पन्न हूँ । तुम्हारे कुल के हम सब सदा सर्वदा गुरु बनते हुए आ रहे हैं । तुम शिष्य हो सकते हो । हे महान्बुद्धि ! मैं तुमको दीक्षा देऊँगा । ऐसा कह कर मुनि ने उस राजा चतुर्भुज को शिष्य किया तथा केशव में नाना प्रकार की भक्ति की शिक्षा दी । श्रीराधिका-गोपियों से सम्वलित श्रीकृष्ण सर्व्वदा ही सेव्य हैं । वाणी, मन, शरीर से व्रज में सर्व्वदा भक्ति करनी चाहिये । हे राजन् तीनों तत्व का विचार

तत्वत्रयमिति प्रोक्तं मुनिभिस्तत्वदर्शिभिः)
स्थूलः सूक्ष्मस्तथा देहो कारणं च ततः परम् ॥३६॥
बन्धनानि त्रयं चैतच्चैतन्यस्य ह्यनादितः ।
स्थूलस्यांतस्तु कालेन जायते नृपसत्तम ॥३७॥
सूक्ष्मदेहस्तु कालेन कारणं च न नश्यति ।
कृष्णभक्ति-प्रभावेन तयोर्नाशो न चान्यथा ॥३८॥
गतोऽपि स्थूलदेहोऽसौ जायते पुनरेव हि ।
छिन्नवृक्षस्य मूलाच्च प्ररोहः संभवेत्यथा ॥३९॥
एवं जीवस्य देहेऽपि नष्टे स्थूले नृपोत्तम ! ।
अनष्टसूक्ष्मदेहत्वात् पुनः स्थूलोऽपि जायते ॥४०॥
मुक्तिं वदन्ति सूक्ष्मस्य नाशे केचिद्विवेकिनः ।
सापि नैव समीचीना मुक्तिर्जीवस्य पार्थिव ॥४१॥
कारणे विद्यमाने तु पुनः सूक्ष्मस्य संभवः ।
किंतूपाधित्रये नष्टे मुख्या मुक्तिस्तदा नृप ॥४२॥

कर स्थिर हो । तत्वदर्शी मुनीश्वरों ने तीन तत्व को माना है-जीवतत्व, जगत्तत्व, तथा ईश्वरतत्व हैं । देह स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण रूप से त्रिविध है । अनादिकाल से ये तीनों ही जीव चैतन्य को बान्धते हैं । हे राजश्रेष्ठ ! समय पाकर स्थूलदेह का नाश होता है तथा सूक्ष्मदेह का भी अन्त होता है । परन्तु कारण शरीर का नाश नहीं है । श्रीकृष्णभक्ति प्रभाव से वह भी नाश हो जाता है । उसके नाश होने का अन्य कोई उपाय नहीं है । स्थूल शरीर का नाश हो जाने पर भी छिन्नवृक्ष-मूल से अङ्कुर उत्पन्न की भाँति पुनः देहान्तर का उत्पन्न सम्भव है । स्थूल शरीर का नाश होने पर भी सूक्ष्मदेह रहने के कारण पुनः स्थूलशरीर का उत्पन्न होता है । कोई-कोई विवेकी सूक्ष्मशरीर का नाश होने पर मुक्ति होती है ऐसा कहते हैं । परन्तु वह सिद्धान्त समीचीन नहीं है । हे राजन् ! कारण-शरीर जब तक विद्यमान है तब तक सूक्ष्मशरीर उ-

सूक्ष्मोपाधेश्च नाशे तु हेतुं जानीहि पार्थिव ।
आत्मानात्मविवेकं हि कृत्वा देहद्वयात् पृथक् ॥४३॥
अनुसन्दधत्त आत्मानं मुक्तिं तु प्राप्नुयाज्जनः ।
किंतु तत्रापि सन्देहः कारणस्य भयान्नृप ॥४४॥
अतः कारणनाशे हि विवेकी यतते सदा ।
तत्रोपायसहस्राणामेक एव सुनिश्चितः ॥४५॥
कृष्णभक्तिर्नृपश्रेष्ठ यां मुक्तोपि हि वांछति ।
तत्रापि कारणं वक्ष्ये शृणु राजन् महामते ॥
श्रीकृष्णस्य कथा नित्यं सेवनीया मनीषिभिः ।
तत्रापि कारणं राजन् महत्सङ्गः क्षणे क्षणे ॥४६॥
यत्रोपगीयते नित्यं देवदेवो जनार्द्दनः ।
समीचीनो ह्ययं लोके पन्था पुंसो कुतो भयः ॥४७॥
कर्णे नित्यं कथाश्रावः मुखे श्रीकृष्णकीर्त्तनम् ।
एतत्सर्वं गुरौ भक्त्या पुमान् प्राप्नोति नान्यथा ॥४८॥
पापानां तु फलं राजन् नरकं भृशदारुणम् ।
पुण्यानां च फलं प्रोक्तं स्वर्गलोको मनीषिभिः ॥४९॥'

त्पन्न हो सकता है । तीन प्रकार की उपाधी का नाश होने पर ही मुख्या मुक्ति होती है । सूक्ष्म उपाधि के नाश का हेतु आत्मानात्म विवेक माना जाता है । स्थूल-सूक्ष्म दोनों प्रकार देह से पृथक् रूप आत्मा का अनुसन्धान के द्वारा मुक्ति होती है परन्तु उसमें कारण उपाधि विद्यमान रहने के कारण सन्देह रहता है । अतः विवेकीजन कारण शरीर नाश के लिये ही यत्नवान हों । उसके लिये हजारों उपाय कहे गये हैं परन्तु एक ही उपाय का निश्चय किया गया है । वह श्रीकृष्णभक्ति है, जिसको मुक्त पुरुष भी चाहना करता है । तो भी कृष्ण-भक्ति होने का कारण कहता हूँ,हे महान् बुद्धि वाले राजन् सुनो । नित्य श्रीकृष्ण कथा की सेवा करें । क्षण-क्षण में महत्संग करने पर कृष्ण-कथा की सेवा होती

तपसश्च फलं सम्यक् तपो-लोकादि पार्थिव ।
सन्यासस्य फलं ज्ञेयं सत्यलोकं तथैव च ॥५०॥
आत्मज्ञानस्य मुक्तिस्तु पंचधा परिकीर्त्तिता ।
हरिभक्तिफलं राजन् वैकुण्ठं समुदाहृतम् ॥५१॥
(आत्मज्ञानस्येत्यत्र-अन्तर्यामिसहितस्यात्मनो ज्ञानं बोद्धव्यम् न केवलस्य)

तथोक्तं तृतीयस्कन्धे—

सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य सारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥इति॥

षष्ठे च—नारायणपरा राजन् नहि वांछन्ति किंचन ।
स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः ।
(अपवर्गो मोक्षः ।)

तत्रापि शुद्धभक्तिर्हि यस्य जीवस्य केशवे ।
न स वांछति वैकुण्ठं न मुक्तिं नैव चाशिषः ॥५२॥

(दामोदराष्टके सत्यव्रतवाक्यम्-हरे त्वन्न मोक्षं न मोक्षावधिं वा वान्छे मोक्षावधि वैकुण्ठः ॥)

है । महत्संग में देवदेव जनार्द्दन नित्य गीत होते हैं । इस लोक में यह महत्संग समीचीन मार्ग है जिसमें कोई भय का कारण नहीं है, कर्ण में नित्य श्रीकृष्ण-कथा का श्रवण,मुख में कृष्णकीर्त्तन इन सबका गुरु-भक्ति से मनुष्य प्राप्त होता है । इनसे अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है । "पापों का फल भयानक नरक, पुण्यों का फल स्वर्गलोक" ऐसा पण्डितों ने कहा है । हे राजन् ! इस प्रकार तपस्या का फल तपलोकादि, सन्यास का फल सत्यलोक, तथा पाँच प्रकार की मुक्ति आत्मज्ञान के फल हैं । हरिभक्ति का फल वैकुण्ठ कहा गया है । आत्मज्ञान का तात्पर्य्य यहाँ पर अन्तर्य्यामि के साथ आत्मा का ज्ञान जानना चाहिये । केवल आत्मा का ज्ञान नहीं है । तृतीय स्कन्ध में कहा है-मेरे सेवक-

तद्भक्तेस्तु फलं राजन् कृष्णप्रीतिः सदैव हि ।
दुर्लभा सर्वलोकानां श्रीकृष्णस्य कृपां विना ॥५३॥
पुष्टिमार्गस्य सा भक्तिः यां वांछन्ति मनीषिणः ।
तत्रापि रसमार्गस्य भक्तिरत्यन्तदुर्लभा ॥५४॥
सेवया लभ्यते सा च रसज्ञस्य गुरोः सदा ।
तद्गुरोश्च कृपा चेत्स्यात् श्रीराधापादपंकजे ॥५५॥
तदा भक्तिर्भवेत्शुद्धा रसमार्गप्रवर्तिनी ।
अतो राजंस्त्वया कार्या श्रीराधाकृष्णयोः सदा ॥५६॥
न केवलस्य कृष्णस्य न वियोगस्तयोर्यतः ।
राधाकृष्णौ सदा ध्येयौ गोपीभावेन पार्थिव ॥५७॥
वृन्दावननिकुंजेषु गोपिकापरिवेष्टितौ ।
बलदेवस्त्वया राजन् सदा सेव्यः प्रयत्नतः ॥५८॥
रेवतीसंयुतः साक्षात् श्रीकृष्णस्याग्रजः प्रभुः ।
बले भक्तिं विना राजन् कृष्णस्तुष्येन्न कर्हिचित् ॥५९॥
अतः सदैव कर्त्तव्या बलभद्रे रतिर्नृप ।
प्रसन्ने श्रीबले भक्तो मुक्तिं भुक्तिं च विन्दते ॥६०॥

जन केवल मेरी सेवा को छोड़कर अन्य कुछ नहीं ग्रहण करते हैं । वे प्राप्त सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्य का त्याग करते हैं । षष्ठ स्कन्ध में भी कहा—हे राजन् ! नारायणपरायण सेवा को छोड़कर अन्य कुछ नहीं चाहते हैं । स्वर्ग-अपवर्ग (मोक्ष) नरकादि में उनका समान भाव रहता है तो भी श्रीकेशव में जिसकी शुद्ध भक्ति है वह वैकुण्ठ की भी इच्छा नहीं रखता है, मुक्ति भी नहीं चाहता है । दामोदराष्टक में सत्यव्रत का वचन ऐसा है । पद्मपुराण देखिये । हे देव ! मोक्ष, तथा मोक्षावधि आदि वर नहीं चाहता हूँ । यहाँ पर मोक्षावधि का तात्पर्य वैकुण्ठ है । हे राजन् ! उस भक्ति का फल श्रीकृष्ण प्रीति है । वह समस्त लोकों में दुर्लभ है । केवल श्रीकृष्ण की कृपा से वह मिलती है । वह पुष्टिमार्ग

गोलोके बसतिस्तस्य सेवते यो बलं सदा ।
कदाचित् कुप्यते कृष्णो भक्तेभ्यः कार्यगौरवात् ॥६१॥
बलभद्रो न कुप्येत भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः ।
एक रूपं हि जानीहि बलं कृष्णं सदा नृप ॥
इति ते वर्णितं राजन् संक्षेपेन मतं मम ॥६२॥
एतत्समाचरञ्जीवः कृष्णं प्राप्नोति निश्चितम् ।
सर्वभूतेषु राजेन्द्र दयां कुरु महामते ॥६३॥

की भक्ति है । जिसको पण्डितगण चाहते हैं । उसमें फिर रसरूपाभक्ति अत्यन्त दुर्लभा है । रसज्ञ गुरु की नित्य-सेवा से ही वह मिलती है । उस प्रकार रसज्ञ गुरु की यदि कृपा होती है तब श्रीराधिका के पादपंकज में रसमार्गप्रवर्त्तिनी शुद्धा-भक्ति होती है । हे राजन् अतः श्रीराधाकृष्ण की सेवा तुमको करनी चाहिये । केवल श्रीकृष्ण की सेवा निषेध है, क्योंकि दोनों का वियोग नहीं है । नित्य गोपीभाव से राधाकृष्ण का ध्यान करना चाहिये । वे दोनों वृन्दावन के निकुंजों में गोपियों से परिवेष्टित हैं । हे राजन् इस प्रकार रेवतीजी के साथ श्रीकृष्णाग्रज, प्रभु, बलदेवजी की सेवा नित्य तुम करो । बलदेवजी की भक्ति के बिना श्रीकृष्ण कभी किसी प्रकार प्रसन्न नहीं होते हैं । अतः सर्व्वदा बलभद्र में रति कर्त्तव्य है । बलभद्र प्रसन्न होने पर मनुष्य मुक्ति भुक्ति का लाभ करते हैं जो नित्य श्रीबलदेवजी की सेवा करता है उसका नित्य गोलोक में अवस्थान होता है । श्रीकृष्ण कभी कार्य्य गौरवता के कारण भक्तों में कोप करते हैं परन्तु भक्तवत्सलबलभद्र कभी कोप नहीं करते हैं । हे राजन् ! श्रीकृष्ण-श्रीबलदेव दोनों को एक रूप जानना । यह मेरा मत है जिसको मैंने संक्षेप में तुमको कहा है । इस मत का आचरण से जीव निश्चय श्रीकृष्ण को प्राप्त करता है । हे महामती वाला राजन् ! सर्व्वभूतों में दया करो । ईश्वर अन्तर्य्यामी रूप में सर्वत्र साक्षात् मौजूद रहते हैं । भक्त के लिये सर्व्वभूत में अवश्य दया रखनी चाहिये ।

अन्तर्यामीश्वरः साक्षात् सर्वत्रैव प्रवर्त्तते ।
दयनीयानि भक्तस्य सर्वभूतानि पार्थिव ॥६४॥
अतिकोमलचित्तस्य न कोऽपि द्वेष्य एवहि ।
अकर्त्तव्यं न कर्त्तव्यं प्राणैः कंठगतैरपि ।
कर्त्तव्यमेव कर्त्तव्यमिति सर्वत्र निर्णयः ॥६५॥
भक्तिरेव हि कर्त्तव्या कर्त्तव्येषु नृपोत्तम ।
अकर्त्तव्येषु ज्ञातव्यं यदाज्ञोल्लंघनं हरेः ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं शास्त्रसारं मया नृप ॥६६॥
(कर्त्तव्याकर्त्तव्यविवेकेन षड्विधा शरणागतिर्ध्वनिता)
तथाहि साधनदीपिकायाम्–
आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् ।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरणं तथा ।
आत्मनिक्षेपकार्पण्यये षड्विधा शरणागतिः ॥
आत्मनिक्षेपः विक्रीतपशुवत् तदधीनता
कार्पण्यं तद्दत्तसत्ताकोऽहं न स्वतः समर्थः इति ॥

क्योंकि भक्त का हृदय अत्यन्त कोमल होता है। भक्त कभी किसी का द्वेषाचरण नहीं करें। जब तक प्राण कंठ में है तब तक इस नियम का पालन अवश्य करना चाहिये। समस्त कर्त्तव्यों में से भक्ति ही परम कर्तव्य है, भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन महान् अकर्त्तव्य जानना चाहिये। यह समस्त शास्त्र का सार उपदेश मैंने तुम से कहा है। कर्तव्य अकर्त्तव्य का विवेक से छै प्रकार की शरणागति ध्वनित हो रही है। पितृचरण ने साधनदीपिका ग्रन्थ में कहा है-आनुकूल्य का संकल्प, प्रातिकूल्य का वर्जन, वे हरि अवश्य रक्षा करेंगे इस प्रकार विश्वास, रक्षकों में उन हरि का वरण करना, आत्म समर्पण, कार्पण्य ये छै प्रकार की शरणागती है। आत्मनिक्षेप का तात्पर्य्य विक्रीत पशु की भाँति उनकी अधीनता, कार्पण्य का अर्थ उनके द्वारा दिया हुआ सत्ता वि-

य एतदाचरेन्नित्यं स कृष्णं प्राप्नुयाद्ध्रुवम् ।
एवं दामोदरः श्रीमान् राज्ञे शिक्षां चकारह ॥६७॥
चतुर्भुजोऽपि राजेन्द्रो गुरोः सेवां चकारह ।
मनसा कर्मणा वाचा शरीरेण त्वहर्निशम् ॥६८॥
इहापि बहूनां राज्ञामधिराजो बभूवह ।
गुरोः प्रसादाद्देहान्ते परं मोक्षं जगाम सः ॥६९॥
तद्वंशे पुरुषाः ख्यातास्चैहानास्ते क्षितीश्वराः ।
गुरुभक्तिरताः सर्वे यशोधर्म-परायणाः ॥७०॥
कृष्णभक्तिरताः शूराः संग्रामेष्वपराङ्मुखाः ।
दानधर्मरताः सर्वे प्रख्याताः पृथिवीतले ॥७१॥
अन्येऽपि बहवः शिष्याः ह्यभवन् धर्मतत्पराः ।
कृष्णभक्तिरताः सर्वे दामोदरगोस्वामिनः ॥७२॥
दामोदरचरित्राणि सत्यनन्तानि मानुषैः ।
न शक्यन्ते प्रवक्तुं हि साकल्येन प्रयत्नतः ॥७३॥

शिष्ट मैं हूँ, मेरी स्वयं कोई सत्ता अर्थात् सामर्थ्य नहीं है। जो इन सबका आचरण करता है वह निश्चय श्रीकृष्ण को प्राप्त करता है। इस प्रकार श्रीमान् दामोदरजी राजा के लिये शिक्षा करने लगे। वह चतुर्भुज राजा भी मन-कर्म्म-वाणी-शरीर के द्वारा अहर्निश गुरु की सेवा करने लगा तथा बहु राजाओं का अधीश्वर हुआ। श्रीगुरु के प्रसाद से देहान्त के पश्चात परममोक्ष का प्राप्त किया। उसके वंश में जितने राजा हुए वे सब गुरुभक्तिपरायण, यशोवान् धार्म्मिक, कृष्णभक्तिरत, शूरवीर, संग्राम में अपराङ्मुखी, दानी करके पृथिवी में प्रसिद्ध हुए। श्रीदामोदरजी के और अनेक धर्म्मपरायण, कृष्णभक्तिरत शिष्य हुए। दामोदरजी के चरित्र अनन्त हैं। उनको कोई साकल्यरूप से बर्णन नहीं कर सकता है ॥६९-७३॥

जिस प्रकार मनुष्य कृष्णचरित्र सुधा का पान कर तृप्ति को नहीं

कृष्णचरित्रपीयूषं पिबन् तृप्तिं न याति हि ।
तथा भक्तस्य चरितामृतं बिन्दुं हि मानवः ॥७४॥
य एतच्छृणुयाज्जीवो हरिभक्तस्य कीर्त्तनम् ।
कृष्णभक्तिर्भवेत्तस्य श्रीकृष्णस्य प्रसादतः ॥७५॥
व्रजे वाञ्छति यो भक्तिं स आचार्यं हि सेवयेत् ।
नैवाचार्यप्रसादेन नैव भक्ति र्व्रजे भवेत् ॥७६॥
न कृष्णं प्राप्नुयाज्जीवो विनाचार्यस्य सेवनात् ।
विनाचार्यचरित्राणि साधनं नैव भूतले ॥७७॥
अतः सदैव श्रोतव्यमाचार्यचरितामृतम् ।
यस्मिन्नास्वाद्यमाने तु नान्यत्र स्याद्रुचिः क्वचित् ॥७८॥
श्रीकृष्णचन्द्रस्य पदारविन्दयोराविष्टचित्तं प्रणमामि नारदम् ।
सदेवतीर्थं व्रजमण्डलं च यो द्विजेन्द्ररूपेण समुद्दधार ॥७९॥
श्रीभट्टनारायणनारदस्य तद्वंशजश्रीरघुनाथसूनुः ।
यथामतिः प्राह मुदा चरित्रमाचार्यवर्यस्य यशो विजृम्भितम् ॥८०॥

प्राप्त करता है, ठीक उसी प्रकार भक्तचरित्र सुधा सागर के प्राप्त होकर अतृप्त हो "एक बूंद मैंने पाया" ऐसा अनुभव करता है । जो इस हरिभक्त का कीर्त्तन-श्रवण करेगा उस जीव को कृष्णकृपा से अवश्य कृष्णभक्ति होगी । जो भक्ति की इच्छा करता है वह ब्रज में रसज्ञ आचार्य की सेवा करें । बिना आचार्य्य प्रसाद से ब्रज में भक्ति नहीं होती है । बिना आचार्य्य सेवा से जीव श्रीकृष्ण की प्राप्ति नहीं कर सकता है । इस भूतल में आचार्य्य चरित्रों को छोड़ कर अन्य कोई साधन नहीं है अतः सर्व्वदा आचार्य्यचरित्र का श्रवण कर्त्तव्य है । उस आचार्य्यचरित्र सुधा का आस्वादन करने पर अन्यत्र रुचि नहीं होती है । जिन्होंने श्रेष्ठ विप्र रूप से देवता-तीर्थों के साथ ब्रजमण्डल का उद्धार किया है उन श्रीकृष्णचन्द्र के पदारविन्दों में आविष्ट चित्त वाले मुनिराज नारदजी को प्रणाम करता हूँ ॥७४ ७९॥

बहु ग्रन्थावलोकेन ज्ञातं हि चरितं मया ।
आचार्यो नारदः साक्षात् भट्टनारायणः प्रभुः ॥८१॥
तस्मिन्नैवास्ति सन्देहस्तेन यच्चरितं कृतम् ।
अयं कृष्णकला साक्षान्नारदो भगवान् हरिः ॥८२॥
यद्यत् करोति तत्सर्वं को वा वक्तुं क्षमो भवेत् ।
तस्यैव कृपया जीवस्तच्चरित्राणि गायति ॥८३॥
श्रुत्वा भक्तस्य चरितं प्रीतो भवतु केशवः ।
प्रार्थयामि सदा भक्तिं श्रीकृष्णान्नापरं क्वचित् ॥८४॥
हृदये यो ममास्थाय चरितं स्वं जगाद ह ।
तं मुनिं नारदं वन्दे भट्टनारायणाह्वयम् ॥८५॥

इति श्रीनारदावतारनारायणभट्टाचार्य्यकुलोद्भवगोस्वामीश्रीरघुनाथात्मज गोस्वामीजानकीप्रसादविरचिते श्रीनारायणभट्टाचार्यचरितामृते भक्तिप्राधान्यकीर्त्तनं नाम षष्ठास्वादः ॥६॥

॥ इति श्रीनारायणाचार्यचरितामृतं समाप्तम् ॥

श्रीव्रजमण्डले उच्चग्रामे श्रीबलदेवमन्दिरे रचितमिदं बहुग्रन्थ-संदर्शनेन श्रीमदाचार्यकृपया गोस्वामीजानकीप्रसादकृतिरियम् समाप्ता ॥

मैंने बहु ग्रन्थ अवलोकन से इस चरित्र को लेखा तथा आचार्य्य श्रीनारायणभट्टजी साक्षात् भगवान् नारद हैं ऐसा जान लिया । इस चरित्र का वर्णन में मेरा कोई भ्रम वा सन्देह नहीं है । श्रीकृष्णविभूति स्वरूप साक्षात् भगवान् श्रीहरि नारदजी जो जो लीला करते हैं उन सब का कौन मनुष्य वर्णन करने में समर्थ हो सकता है ! केवल उनकी कृपा से ही जीव उनके चरित्रों का गान कर सकता है । भक्त के चरित्र का श्रवण कर श्रीकेशव प्रसन्न हों । मैं नित्य श्रीहरि से भक्ति के बिना अन्य कुछ प्रार्थना नहीं करता हूँ । जिन्होंने मेरे हृदय में विराजमान होकर अपने चरित्र का गान किया है उन भट्टनारायण नामक मुनिवर नारदजी की मैं बन्दना करता हूँ ॥८०-८५॥ (अनुवादक-कृष्णदास)

आप "रासलीलानुकरण आविष्कार" विषय का खोज में है। आप लिखते हैं कि मैंने एक पत्र लिखा था, उसका भी उत्तर नहीं मिला। मैं आपसे पूर्णरूप से सम्मत हूँ कि श्रीनारायणभट्ट जी रासलीला के आचार्य्य हैं। सब प्राप्त प्रमाणों तथा साक्ष्यों का अध्ययन करके मैं निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ और अपनी पुस्तक में मैंने यही लिख भी दिया हैं।"

(५०) ठौर ठौर रास के बिलास लै प्रगट किये, जिये यौं रसिकजन कोटि सुख पाये हैं। (भक्तमाल के टीकाकार प्रियादासजी)

(५१) श्रीनारायणभट्टजी रासलीलानुकरण के मूल आचार्य्य हैं इस विषय में "(लघु) श्रीनारायणभट्टचरितामृत" में कहा है—यह भी एक प्रामाणिक अत्यन्त सुन्दर ग्रन्थ है। उक्त ग्रन्थ हमारे पास मौजूद है। आगे इसका प्रकाशन करने की इच्छा है।

पुनरेको द्विजः प्राप्तो भट्टनारायणाश्रमम्।
मन्त्रं गृहीत्वा तं प्रीह आज्ञां देहि मम प्रभो ! ॥
प्रसन्नो भगवानाह मदुक्तं कुरु पुत्रक !
राधाकृष्णविहाराणि त्वया कार्य्याणि निश्चितं ॥
इत्युक्त्वा मुकुटं दत्वा करहलपुरवासिनम्।
कृष्णलीलाविहाराणि कारयामास वै मुनिः ॥
अद्यापि ब्रजभूमौ ते गुरोः स्वामिपदं गताः।
तद्वंश्यास्तत्र स्थाने तु कृष्णलीलाः रचन्ति वै ॥

(५२) तत्रैव-तीर्थोद्धार बारे में कहा है:-

यानि स्थितानि भगवच्चरणादिचिन्हा-
न्यधिश्रितानि सदनानि च मण्डलानि।
श्रीवज्रनाभकृतमूर्त्तिकदम्बकानि
कृत्स्नानि तानि स सुधी प्रकटीचकार ॥

(क्रमशः)
